



यह पुस्तक देश के अलग-अलग हिस्सों में वन्यप्राणी और पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रहे पंद्रह ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखी गई कहानियों का संकलन है जो अपने-अपने कार्यक्षेत्रों के अनुभवी विशेषज्ञ हैं। मनुष्य से इतर जीव-जगत और वन्यजीवों के प्रति मनुष्य का आकर्षण बहुत पुराना है। इस पुस्तक के लिए सच्ची कहानियाँ लिखने वाले सभी लेखक अलग-अलग दिशाओं और रुचियों के लेखक हैं : पक्षी, साँप, तिल्ली, सिलहरी, गिरगिट, हाथी, शेर, बाघ, मगरमच्छ, कीट, वनस्पति, पेड़-पौधे। क्या नहीं हैं इन लोगों के कर्मजगत में? वन्यजगत और वन्यजीवन के प्रति इन लोगों की भावना और जम्बा अनुभवा और अनुकरणीय है। इस जगत को संरक्षित और सुरक्षित रखने के लिए ये लोग प्राणपण से तत्पर और सन्नद्ध हैं। इन लोगों में पक्षी विज्ञानी, प्रकृति विज्ञानी, जीव वैज्ञानिक, वनस्पति शास्त्री, वन्यजीवन के सिद्धहस्त फोटोग्राफर और फिल्म निर्माता, वन अधिकारी, लेखक और संपादक से लेकर पर्यावरण कार्यकर्ता और नाथ खेने वाले तक शामिल हैं। पर्यावरण पथ के इन सर्पित पथिकों की आँखों देखी और जानी-मानी हुई ये कहानियाँ किशोर मन को जल-जंगल, वन-प्रांतर और वन्यजीवन एवं पर्यावरण के प्रति तो आकर्षित करेंगी ही, साथ ही एक सामान्य पाठक तथा किसी भी पर्यावरण सजग व्यक्ति को भी आनंद प्रदान करेंगी।

इस पुस्तक के अनुवादक अरविन्द गुप्ता विज्ञान को जाम जन में लोकप्रिय बनाने के कथ्य में लगे हुए हैं। वे इन्वॉनियर, बाल गतिविधि पुस्तकों के सिद्धहस्त लेखक और ट्रस्ट की अनेक पुस्तकों सहित कई अन्य पुस्तकों के भी अनुवादक हैं।



₹.55.00

ISBN 978-81-237-5532-8

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

पर्यावरण पथ के पथिक

पंद्रह पर्यावरणविदों की असली जीवन कहानियाँ

संपादन

ममता पंड्या ■ मीना रघुनाथन

अनुवाद

अरविन्द गुप्ता



पर्यावरण पथ के पथिक

पंद्रह पर्यावरणविदों की असली जीवन कहानियां

संपादन: ममता पंडया, मीना रघुनाथन

हिंदी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

अंग्रेजी संस्करण के प्रकाशक: सेंटर फार इनवायरेनमेंट एडयूकेशन, थालतेज टेकडीए अहमदाबाद (गुजरात)

हिंदी संस्करण: नेशनल बुक ट्रस्ट, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली 110016

साभार

प्रोजेक्ट असिसटेंट	: अंबिका अइयादुराई
अवधारणा और कल्पना	: ममता पंडया, मीना रघुनाथन
डिजाइन और उत्पादन	: मुकेश पांचाल
पेंसिल चित्र	: मुकेश आचार्य, मुकेश बारड, विजय श्रीमाली
चित्र	: मुकेश आचार्य, मुकेश बारड, शैलेश भालानी, प्रफुल्ल बिल्ली मुकेश पांचाल, विजय श्रीमाली, डी एम थुम्बर
सहयोग	: कांतिलाल बी परमार
छपाई	: बाबू जोस

सेंटर फार इनवायरेनमेंट एडयूकेशन, अहमदाबाद (सीईई) एक राष्ट्रीय संस्था है जिसकी स्थापना 1984 में हुयी। इसे पर्यावरण के क्षेत्र में उत्कृष्ट शैक्षणिक काम करने के लिए पर्यावरण मंत्रालय से अनुदान मिलता है। सीईई का प्रमुख उद्देश्य बच्चों, युवाओं और आम लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता फैलाना है। इसके लिए सीईई पहले सृजनात्मक कार्यक्रम और सामग्री विकसित करता है और फिर वास्तविक परिस्थितियों में उनकी सार्थकता का परीक्षण करता है।

विषयसूची

प्रस्तावना

जंगली कौन हैं?

- 1 पूरी पीढ़ी के लिए प्रेरणा
सलीम अली
- 2 एक नयी दुनिया की खोज
कार्तिकेय वी साराभाई
- 3 चिड़ियाघर में बड़े होना
एस्थर डेविड
- 4 एक वनस्पतिशास्त्री का मनन-चिंतन
एच वाय मोहन राम
- 5 सांपों का दीवाना
रोमोलस विटेकर
- 6 भीमकाय प्रेम
आर सुकुमार
- 7 कीड़े-मकौड़े भी वन्यजीव ही हैं!
इसाक केहिमकर
- 8 शेर का पीछा और पेशा
रवि चेल्लम
- 9 वन्यजीवों की शूटिंग
शेखर दत्तात्री
- 10 नाम, स्थान, जानवर, चीज . .
सीमा भट्ट
- 11 वन्यजीवन संरक्षण के लिये लेखन
दीपक दलाल
- 12 फारेस्ट अफसर के साथ एक दिन
सुनीता सिंह

13 कच्छ की खाड़ी के जंगली गधे
नीता शाह

14 पक्षी मेरी पड़ोसी हैं
कासिम मोहम्मद

15 देखो! मैं आ रहा हूँ!
अर्चना बाली

प्रस्तावना

लगभग चौदह वर्ष पहले, हम दोनों ने अपने आपको सीईई में पाया। सीईई की स्थापना 1984 में हुयी। इस राष्ट्रीय केंद्र में पर्यावरण शिक्षण पर उत्कृष्ट शैक्षणिक काम होता है। शायद नियति ही हमें यहां लायी क्योंकि हमारी पूर्व शैक्षणिक पृष्ठभूमियों और नौकरियों का, यहां के काम से कोई तार्किक संबंध नहीं था।

यहां पर हम कई अन्य लोगों से मिले। इसमें से अधिकांश हमारी तरह ही बहुत अलग-अलग पृष्ठभूमियों से आये थे। हम सबने साथ मिलकर संरक्षण की शिक्षा के उदीयमान क्षेत्र में काम करना शुरू किया। इस नयी डगर पर चलते हुये हम रोजाना ही अपने काम के बारे में कुछ नया सीखते। हम अपने और परिवेश के बारे में भी रोज नयी-नयी बातें सीखते। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात थी।

इसमें शक नहीं कि हमें एक अद्भुत प्राकृतिक परिवेश में काम करने का मौका मिला था। हम बहुत भाग्यशाली थे। स्टाफ मीटिंग में बजट पर जोरदार बहस के दौरान आपको और कहां पर लापरवाही के साथ मोर चलता नजर आयेगा, या फिर खिड़की पर रखे खाली चाय के कप में गिलहरी निडर होकर डुबकी लगाती नजर आयेगी, या फिर कोई साथी कमरे में एक सांप पकड़कर लायेगा जो उसने बाहर झाड़ियों में शौचालय के पास पकड़ा था? यहां हर रोज कुछ न कुछ मजा था! और हरेक क्षण हम आंखे खोलकर आसपास की सुंदरता का ध्यान से 'अवलोकन' कर रहे थे, न कि सिर्फ उसे 'देख' रहे थे।

और जैसे केक के ऊपर मीठी आइसिंग होती है उसी प्रकार हमें भी कुछ अद्भुत लोगों से मिलने करने का अवसर मिला। ये लोग संरक्षण और वन्यजीवन की दुनिया के महान दिग्गज थे। इन लोगों ने हमसे बातचीत की, हमें अपनी फोटोग्राफ्स और फिल्में दिखायीं और अपने लेखों, ज्ञान और अनुभव को बांटा। उनकी अलग-अलग रुचियां थीं - पक्षी, सांप, तितलियां, औषधीय-पौधे, शेर . . . । इन रुचियों ने उन्हें अन्य कार्य करने के लिये प्रेरित किया जैसे - फोटोग्राफी, फील्ड-रिसर्च, लिखना और पढ़ाना। परंतु उन सभी में, जो समान बात थी वो था भारत की वनसंपदा और संरक्षण के प्रति उनका अथाह प्रेम। शायद इसी अथाह प्रेम के कारण ही उन्हें अपने-अपने कामों में अभूतपूर्व सफलता मिली।

हमें बहुत से युवा भी मिले - होशियार, उत्साही और साहसी जिन्होंने वन्यजीवन संरक्षण के मजेदार और चुनौती भरे क्षेत्र में काम करने का निर्णय लिया था। उनके पास अक्सर कई अन्य विकल्प मौजूद होते। दूसरे लोगों को अपनी राय मनवाने में उन्हें काफी मुश्किल आयी। पर फिर भी उन्हें कोई रोक नहीं सका।

इन सभी लोगों से हमें मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और हम उनसे प्रेरित भी हुये। हमें यह भी पता था कि बाकी लोगों को इन हस्तियों से मिलने का मौका नहीं मिलेगा। हमें ऐसा लगा कि इन कहानियों को हमें दूसरों के साथ बांटना चाहिये। तभी हमें एक विचार आया - क्यों न हम इन लोगों से खुद की कहानी लिखने को कहें? फिर हम इन कहानियों को एक पुस्तक में संकलित करके, इन दिग्गजों के आनंद और उत्साह को, युवाओं की एक नयी पीढ़ी के

साथ बांट सकेंगे। बहुत से युवा आज जीवन के एक महत्वपूर्ण चौराहे पर खड़े हैं और कौन सी दिशा चुनें इसके बारे में सोच रहे हैं। हम उन्हें अलग-अलग रास्ते बताने की बजाये उनके सामने पूरा नक्शा ही खोलना चाहते थे जिससे कि वे विभिन्न रास्तों को खुद देख सकें और खुले दिमाग से अपनी रुचि के अनुसार कोई राह चुन सकें।

उसके बाद हमने अपने 'हीरो' और 'हीरोइनों' की एक सूची बनायी जिससे उनकी विभिन्न रुचियों और कार्य की एक झलक मिल सके। पहले हमने इन सभी हस्तियों को पत्र लिखे। हमें आश्चर्य हुआ जब उनमें से लगभग सभी ने जवाब दिया! वे लिखने के लिये भी तैयार हो गये। लेखों के लिये हमें उन्हें कई बार याद दिलाना पड़ा और बार-बार तिकतिकाणा पड़ा! हमारे 'हीरो' और 'हीरोइन' न केवल अपने कार्य में निपुण निकले वो बहुत अच्छे लेखक भी साबित हुये!

अब आपके सामने ये पंद्रह कहानियां प्रस्तुत हैं। देश में अलग-अलग स्थानों पर स्थित पंद्रह लोगों - **पर्यावरण पथ के पथिकों** ने इन्हें लिखा है। अगर ये कहानियां आपको उनका अनुसरण करने के लिये प्रेरित करें तो हमें इसके बारे में अवश्य लिखें। अगर आपको ये कहानियां पसंद आयीं हों और आपको उन्हें पढ़कर मजा आया हो तो भी हमें लिखें। हम आपके पत्रों की प्रतीक्षा करेंगे। अंत में हम सभी लेखकों को इनके लिये हार्दिक धन्यवाद देना चाहेंगे।

संपादक

जंगली कौन हैं?

क्या वो दहाड़ता है, या गुर्गता है?

क्या वो प्राणी, मछली, चिड़िया है?

क्या वो घने जंगल में रहता है, या बर्फ से ढंकी चोटी पर?

क्या वो रेगिस्तान में रहता है या फिर समुद्र की गहराईयों में?

क्या उस पर धारियां हैं, या उसकी चमड़ी मोटी है?

क्या उसके पंख सुंदर हैं, या उसके बाल रोयेंदार हैं?

क्या उसकी मूछें बड़ी और डरावनी हैं?

क्या उसके पंजों के नाखून बहुत पैसे हैं?

क्या वो उस घने जंगल में अंधाधुंध उगता है?

जहां टेढ़ी-मेढ़ी शाखाओं पर बंदर कूदता है?

वहीं पर आकर हम सब करते हैं गलती।

शेर, गोरिल्ले को जंगली समझने की गलती।

जंगली भीमकाय हो सकते हैं - जैसे ब्लू व्हेल या हाथी।

पर वे एकदम सूक्ष्म : अमीबा, कीट, चींटी भी हो सकते हैं।

जंगली - कीट-पतंगे, सरीसृप या पक्षी हो सकते हैं।

वे अकेले गुफा में या फिर बड़े झुंड में रह सकते हैं।

वो सघन अंधेरे वनों में विशालकाय पेड़ हो सकते हैं।
वो बगीचे की खरपत या पार्क की काई हो सकते हैं।

हम अभी तक जीवित चीजों को पालतू नहीं बना पाये हैं।
न ही खेतों में और न घरों में उन पर काबू पर पाये हैं।

वो रहते हैं मुक्त प्राणियों की तरह।
घरों की दरारों या पेड़ों के ऊपर।

छिपकली, मकड़ी, खरपत, चूहे और घोंघे भी
चीतों और व्हेल मछलियों जैसे ही जंगली हैं।

आपको ऊंचे पहाड़ों पे चढ़ने और गहराई में डुबकी लगाने की जरूरत नहीं है।
न ही घने जंगलों में विचरने या जीप में बैठकर मीलों यात्रा करने की जरूरत है।

आप यह जंगली सफारी यात्रा हर रोज कर सकते हैं।
यह यात्रा घर में, बाग में या राह चलते कर सकते हैं।

बस अपनी आंखें खुली रखें और सभी इंद्रियां सर्तक रखें।
और राह चलते इन जीवों की तलाश मिट्टी में भी करें।

आसपास अपने, आप पायेंगे अनेकों जीव।
छोटे हो या बड़े, ये सभी होंगे जंगलीजीव।

सलीम अली

सलीम अली को अक्सर 'बर्ड मैन आफ इंडिया' के लोकप्रिय नाम से जाना जाता है। वो भारत के सबसे जाने-माने पक्षी-विज्ञानी थे। उनका जन्म मुंबई में 1896 में हुआ। उनकी चिड़ियों और पक्षी-निरीक्षण में रुचि तब शुरू हुयी जब वे केवल आठ साल के थे। सलीम अली में, पक्षियों के अथाह ज्ञान के साथ-साथ, उनके बारे में सहजता से लिखने का भी एक विशेष गुण था। उन्होंने बहुत सारी पुस्तकें लिखीं जिसमें एक, *द बुक आफ इंडियन बर्ड्स* भी है। यह पुस्तक, पक्षी-निरीक्षकों के लिए निहायत जरूरी और एकदम अनिवार्य समझी जाती है। सलीम अली ने अपनी आत्मकथा *द फाल आफ ए स्पैरो* जब लिखी, तब उनकी उम्र 87 साल की थी। 91 वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया।

पूरी पीढ़ी के लिए प्रेरणा

सलीम अली के अपने शब्दों में, "जब मुझे पक्षी-निरीक्षण का रोग लगा तब यह बीमारी भारतीयों से लगभग अछूती थी। उस समय पर्यावरण संरक्षण जैसे शब्द भी कभी-कभार ही सुनने को मिलते थे।"

माता-पिता के देहांत के समय सलीम अली की उम्र बहुत कम थी। उनका लालन-पालन बड़े प्यार भरे माहौल में हुआ। उनके संयुक्त परिवार में बहुत से चाचा-ताऊ, भाई-बहन तथा अन्य रिश्तेदार और मित्र भी थे। उनका घर

खेतवाड़ी में स्थित था, जो आजकल मुंबई में, चर्नी रोड का एक भीड़ वाला इलाका है। परिवार के किसी भी सदस्य की पक्षियों में रुचि नहीं थी - पक्षियों में अगर परिवार की कोई रुचि थी तो वो थी उन्हें खाने में! चाचा-ताऊ के बच्चों को अगर किसी चीज में सबसे ज्यादा मजा आता था तो वो था आसपास के देहात में छोटे पक्षियों को ऍअर-गन से मारने में। वो संरक्षण का जमाना नहीं था, हमें यह बात नहीं भूलना चाहिये। उस समय शिकार करना एक 'मर्दाना' खेल समझा जाता था।

नौ साल की उम्र में सलीम अली के चाचा ने उन्हें एक ऍअर-गन भेंट की। बंदूक, सलीम अली का सबसे बेशकीमती खजाना थी। वो हर किसी को अपनी नयी बंदूक दिखाते। धीरे-धीरे वो बंदूक चलाने में उस्ताद हो गये।

बच्चे अपनी अचूक निशानेबाजी की शान जताने के लिए अक्सर घर के अंदर की गौरैया को भी अपनी बंदूक का निशाना बनाते। एक बार जब घर में इस प्रकार का शिकार चल रहा था तो सलीम अली ने एक मादा गौरैया को ध्यान से देखा और उसके बारे में कुछ जानकारियां दर्ज करीं। इस गौरैया ने उनकी अस्तबल के एक झरोखे में अपना घोंसला बनाया था।

उन्होंने गौरैया के बारे में यह जानकारी लिखी थी : "1906/7 नर गौरैया घोसले के छेद के बाहर सींखचे पर बैठा जबकि मादा अंदर अंडों पर बैठी रही। मैंने उनपर घोड़ा-गाड़ी के पीछे से आक्रमण किया और नर को गोली से मार दिया। कुछ ही समय के बाद उस मादा को एक और नर मिल गया जो भी बाहर सींखचे पर बैठा 'रखवाली' करने लगा। मैंने इस नर को भी मार दिया। परंतु इसके कुछ ही देर बाद उस मादा की रखवाली करने के लिए एक अन्य नर आ गया। अगले सात दिनों में मैंने सींखचे पर बैठी आठ नर गौरैया को मारा। हर बार मादा के पास कोई नया नर आ जाता जैसे कि वो बस उसके पति के मरने का इंतजार कर रहा हो।"

उस समय सलीम ने जो कुछ भी लिखा वो एक शिकारी की हैसियत से लिखा, न कि एक पक्षी-निरीक्षक की हैसियत से। परंतु इस नौ वर्ष के बालक की अवलोकन शक्ति इतनी प्रखर थी कि साठ साल बाद, इसी विवरण को *न्यूजलेटर फार बर्डवाचर्स* नाम की पत्रिका में लगभग उसके मूलरूप में ही प्रकाशित किया।

गर्मियों की छुट्टियों में उनका पूरा परिवार घर बदल कर चेंबूर में आया जो आज मुंबई का एक बहुत व्यस्त इलाका है। परंतु उन दिनों वहां पश्चिमी घाट की पहाड़ियों पर काफी घने जंगल थे। वहां तमाम किस्म के पेड़-पौधे और प्राणी थे - विशेषकर वहां बहुत सारी चिड़ियां थीं। गर्मियों की छुट्टियों में सुबह बिस्तर में लेटे-लेटे सलीम अली को दर्ईया (मैगपाई राबिन) का गाना बेहद पसंद आता था। यह एक ऐसी याद है जिसे वे पूरे जीवन भर नहीं भूले। उस गाने को दुबारा सुनने पर उन्हें फौरन अपने बचपन के वही मुक्त क्षण याद आ जाते थे।

1900 के बिल्कुल प्रारंभ में, सलीम अली लगभग सभी स्कूली विषयों में सामान्य थे। उन्हें यह भी याद है कि वो गणित में खासतौर पर कमजोर थे। उन्हें हाकी, टेनिस, बैडमिंटन और कभी-कभी क्रिकेट खेलना पसंद थे। उनका मुख्य शौक था खेल-खेल में चिड़ियों का शिकार करना। इस खेल में वो अपने आपको दूसरों से बेहतर मानते थे।

युवा सलीम ने प्राणिशास्त्र का विषय पढ़ने और बड़े होकर पक्षी-वैज्ञानिक बनने की सोची। उनका सपना एक बड़े खोजी और शिकारी बनने का था। वो प्राकृतिक विज्ञान, पक्षियों, सैर, खोज-यात्राओं, और शिकार से संबंधित पुस्तकें पढ़ते। उन्हें बड़े शिकार के रोमांचक और साहसी कारनामों में खास मजा आता था।

एक बार जब उनका परिवार गर्मियों की छुट्टियों में शिकार कर रहा था तब एक ऐसी घटना घटी जिससे उनकी पक्षियों में वैज्ञानिक रुचि जगी। यही रुचि बाद में विकसित होकर उनके जीवन का सबसे गहरा प्रेम बनी।

चिड़ियों पर निशाना साधने के दौरान 10 साल के सलीम ने एक गौरैया का शिकार किया। शिकार का स्वादिष्ट भोजन पकाने से पहले सलीम को गौरैया की गर्दन पर एक असाधारण रंग का पीला चकत्ता दिखायी दिया। वो देखने में बिल्कुल "कढ़ी के धब्बे" जैसा था। सलीम का कौतुहल जागा और वो मरी चिड़िया को परिवार के शिकारी - अपने चचाजान को दिखाने ले गये।

उनके चचाजान, बांबे नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी (बीएनएचएस) के एक सक्रिय सदस्य थे। वो इस संस्था के इने-गिने भारतीय सदस्यों में से एक थे। उन्हें भी गौरैया कुछ असाधारण लगी। गौरैया के बारे में और जानने में उन्होंने भी रुचि दिखायी। उन्होंने बीएनएचएस संस्था के अवैतनिक सचिव - मिस्टर मिलार्ड को एक परिचय पत्र लिखा और सलीम से उनके पास चिड़िया को ले जाने को कहा। यह 1908 की बात है। सलीम अली का बीएनएचएस के साथ यह पहला

संपर्क था। बाद में इस संस्था ने उनके जीवन और पेशे को ढालने में एक अहम रोल निभाया।

उन दिनों गोरी चमड़ी वाले अंग्रेजों और स्थानीय भारतीयों के बीच बहुत कम ही मिलना-जुलना होता था। सलीम अली को किसी विदेशी से मुंह-दर-मुंह मिलने में काफी घबराहट हो रही थी। खैर, उन्होंने मरे पक्षी को एक कागज के थैले में डाला और फिर बीएनएचएस के कमरों में से होते हुए अंदर दाखिल हुये। ये कमरे लुभावने प्राकृतिक नमूनों और जीवों के नमूनों (स्पेसिमेन) से भरे हुये थे।

मिस्टर मिलार्ड से मिलने के बाद सलीम की घबराहट एकदम दूर हो गयी। इस भले और दयालु इंसान ने न केवल इस पीली गर्दन वाली गौरैया (यैलो थ्रोटीड स्पैरो) को पहचाना परंतु उसने अपने संकलन में से सलीम को उसी प्रकार की चिड़ियों के कई और नमूने भी दिखाये। मिस्टर मिलार्ड ने सलीम को कुछ पुस्तकें भी पढ़ने को दीं। पक्षियों से संबंधित इन किताबों को सलीम अली ने अगले साठ सालों में बार-बार पढ़ा।

मिस्टर मिलार्ड ने सलीम का परिचय बीएनएचएस में अन्य लोगों से भी कराया। उन्होंने सलीम को अध्ययन के लिए पक्षी संकलन करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने पक्षियों को संभालकर, संजोकर रखने की ट्रेनिंग दिलवाने का वादा किया और सलीम को सही प्रकार से पक्षियों का विवरण लिखना भी सिखाया।

पीली गर्दन वाली गौरैया ने सलीम अली के जीवन में एक नया संसार ही खोल दिया। सलीम अली अब प्रकृति पर ढेरों पुस्तकें पढ़ने लगे - खासकर पक्षियों के बारे में। उन दिनों भारतीय पक्षियों पर कोई भी सचित्र पुस्तक नहीं थी और इस वजह से किसी भी नौसिखिये के लिए पक्षियों को पहचानना बहुत कठिन होता था। परंतु इस नौजवान की इसमें रुचि बढ़ती ही गयी और अंत में पक्षी ही उसका जीवन बन गये।

बाद में जब पक्षी-विशेषज्ञ के रूप में उनकी ख्याति बढ़ी तब सलीम अली से अक्सर पक्षी-निरीक्षण के बारे में उनके अनुभव सुनाने को कहा जाता। वो पक्षी-निरीक्षक के पेशे को एक बहुत शांतिप्रिय पेशा मानते थे। परंतु इसमें सबसे अधिक आनंद सुरागों को खोजने में आता है। इस प्रकार आप तार्किक रूप से या तो अपनी मान्यता को सिद्ध कर सकते हैं या फिर उसे नकार सकते हैं।

इसी मनोवृत्ति के कारण ही शायद सलीम अली, बया पक्षी के जनने संबंधी जीववैज्ञानिक गुत्थी की पहली बार सही व्याख्या करने में सफल हुये।

समुद्र के पास के छोटे घर में रहते हुये एक बार सलीम अली ने हफ्तों तक, हर रोज कई घंटे एक गुप्त स्थान के पीछे छिप कर बिताये। यह जगह जमीन से कोई दस फीट ऊपर थी। इस प्रकार उन्होंने बया पक्षियों के व्यवहार का विस्तृत विवरण लिखा और उनके चित्र बनाये। उन्होंने बारीक अध्ययन के बाद पाया कि जब नर बया पक्षी अपने घोंसलों को आधा बना लेते हैं तब मादा बया पक्षियों का एक झुंड सभी घोंसलों का निरीक्षण करने आता है। मादा को जो भी आधा बना घोंसला पसंद आता है वो उसमें रहने लगती है और उस नर को अपने साथी के रूप में स्वीकार करती है। नर उस घोंसले को पूरा करता है और फिर मादा को अंडे देने और सेने के लिए छोड़कर पास ही में एक नया घोंसला बनाना शुरू कर देता है। वो दुबारा इसी नमूने को दोहराता है और इस तरह एक और मादा बया, नये घोंसले में आकर बसती है। धीरे-धीरे बया पक्षियों के घोंसले सक कालोनी का रूप लेते हैं।

यह अवलोकन आज भी बया पक्षी के व्यवहार में एक क्रांतिकारी खोज के रूप में स्वीकारे जाते हैं। सलीम अली को उस समय क्या महसूस हुआ उसी का एक उदाहरण, “भारत में पक्षियों की इतनी प्रजातियां हैं और उनमें इतनी विविधता है कि इस प्रकार की अन्य कितनी ही खोजें, उत्साही और लगनशील पक्षी-निरीक्षकों का इंतजार कर रही हैं।”

सलीम अली केवल एक महान पक्षीविज्ञानी ही नहीं थे। प्रकृति में उनकी गहरी रुचि थी और उनके जीवन ने भारत में एक पूरी पीढ़ी को पर्यावरण संरक्षण की ओर प्रेरित किया है।

(सलीम अली की पुस्तक ‘द फाल आफ ए स्पैरो’ पर आधारित, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985)

कार्तिकेय वी साराभाई

अहमदाबाद से अपनी बुनियादी शिक्षा पूरी करने के बाद कार्तिकेय वी साराभाई ने केंब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैंड से प्राकृतिक विज्ञान में ट्राईपोस की उपाधि प्राप्त की और पोस्ट ग्रेजुएट पढ़ाई एमआईटी, अमरीका में की।

कार्तिकेय ने शिक्षा में शुरुआती काम विक्रम साराभाई कम्यूनिटी साइंस सेंटर में किया। उन्होंने 1977 में विकसत (विक्रम साराभाई सेंटर फार डेवलपमेंट इंटरएक्शन) और 1979 में सुंदरवन नेचर एड्युकेशन सेंटर की स्थापना की। 80 के दशक की शुरुआत में वो अहमदाबाद में डब्लूडब्लूएफ की शाखा स्थापित करने में कामयाब रहे। कुछ समय पहले तक वो डब्लूडब्लूएफ की उत्तरी गुजरात शाखा के चेयरमैन थे।

कार्तिकेय, सेंटर फार इंवारनमेंट एड्युकेशन के स्थापक निदेशक हैं। यह एक राष्ट्रीय केंद्र है जिसे भारत सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय से वित्तीय सहायता मिलती है। यह केंद्र नेहरू फाउंडेशन फार डेवलपमेंट से संबद्ध है। वो आईयूसीएन कमीशन फार एड्युकेशन और कम्यूनिकेशन के प्रांतीय चेयरमैन भी हैं।

एक नयी दुनिया की खोज

सत्तर के दशक के शुरू में अगर किसी ने मुझे से मेरी रुचियों के बारे में पूछा होता तो उसमें निश्चित रूप से 'वन्यजीव', 'प्रकृति' या 'पर्यावरण' जैसे शब्द नहीं शामिल होते। इन सबमें मेरी रुचि इसी दौरान जागी, परंतु इस रुचि के लिए किसी एक विशेष घटना को श्रेय देना कठिन होगा क्योंकि उस दौरान बहुत सी बातें हुईं जो महत्वपूर्ण थीं।

परंतु अगर इसके लिए मुझे किसी एक 'घटना' की पहचान करनी हो तो यह शुरुआत हमारे बाग में चुगद यानि स्पाटिड उल्लुओं (एथीन ब्रामा) की एक जोड़ी से शुरू हुयी। मेरी पत्नी राजश्री (राजू) को, अहमदाबाद के हमारे बाग में पेल्लोफोर्म के पेड़ की डाल पर (पेल्लोफोर्म राक्सबर्गी) उल्लुओं की एक जोड़ी बैठी हुयी दिखायी दी। वे दोनों दिखने में छोटे बच्चों जैसे थे और अपनी सिर को बड़े रोचक तरीके से नचा रहे थे। कुछ दिनों तक हरेक शाम हम उन्हें निहारते। कुछ दिनों बाद ही राजू का जन्मदिन आने वाले था और मैंने उसे उस अवसर पर एक उल्लुओं की किताब भेंट करने की सोची।

नटराज सिनेमाघर के पास स्थित पाकेट बुकशाप में सचमुच एक ऐसी ही किताब थी। उसके कवर पर एक फोटोग्राफ था जिसमें एक उल्लू मरे हुये चूहे को अपनी चोंच में पकड़े हुये उड़ रहा था। उसे देखकर मैं थोड़ा भयभीत हुआ। हमारे बाग के उल्लुओं से इसका क्या संबंध! उस समय प्राकृतिक सौंदर्य के बारे में मेरी संवेदनार्ये इतनी गहरी नहीं थीं। मैं उस फोटोग्राफ का आनंद नहीं ले सका और अंत में मैंने वो पुस्तक नहीं खरीदी।

1976 में हम लोग कुछ साल मुंबई और बौस्टन में रहने के बाद अहमदाबाद वापिस लौटे। उस समय हमारा बड़ा लड़का मोहल छह साल का था। वो हवाईजहाजों के पीछे एकदम दीवाना था। हमारे पास एक सचित्र पुस्तक थी जिसमें उस समय प्रयोग में लाये जाने वाले लगभग सभी हवाईजहाज दिये गये थे। हम रोजाना ही उस पुस्तक के पन्नों को पलटते थे। मोहल को सभी हवाईजहाजों के नाम रट गये थे। परंतु उनमें से केवल चंद ही हवाईजहाजों को भारत में देखा जा सकता था।

अहमदाबाद में वापिस आकर मोहल का ध्यान बगीचे में पक्षियों की ओर आकर्षित हुआ। वो अक्सर किसी चिड़िया की ओर इशारा करता और उसका नाम पूछता। इससे मुझे खुद अपनी अज्ञानता का पता चला। कई बार तो मुझे लगा जैसे मैंने उस पक्षी को पहले कभी देखा ही नहीं हो। उल्लुओं के अनुभव से उबरने के बाद मैं पक्षियों के बारे में, हवाईजहाजों जैसी ही एक अच्छी पुस्तक तलाशने लगा।

उसी समय विक्रम ए साराभाई कम्यूनिटी साइंस सेंटर के परिषद की एक बैठक हुयी। उसके एक सदस्य संस्कार केंद्र में लगे पुस्तक मेले में जाना चाहते थे। मैंने उनसे पक्षियों पर कोई अच्छी पुस्तक सुझाने के लिए कहा। पुस्तकों की कई दुकानों पर उन्होंने किसी डा सलीम अली की पुस्तक के बारे में पूछा। परंतु हर बार उन्हें एक ही जवाब मिला। उसका वर्तमान संस्करण बिक चुका था पर उन्हें नये संस्करण के जल्दी ही आने की उम्मीद थी।

भारतीय पक्षियों पर कोई पुस्तक उपलब्ध हो और उसके इतने चहेते हों कि पुस्तक का पूरा संस्करण हाथों-हाथ बिक जाये यह मेरे लिए एक बिल्कुल नयी खबर थी। अगले कुछ महीनों तक मैं उस पुस्तक को तलाशता रहा। काफी इंतजार के बाद उसका दसवां संस्करण छपा।

मोहल और मेरे पास अब एक नया खिलौना था उसका हम तत्काल अपने बगीचे में इस्तेमाल करने लगे और नये-नये पक्षी खोजने लगे। मुझे शुरू की कुछ चिड़ियों याद हैं - हमारे लान में पिल्लख यानि यैलो वैगटेल्लस (मोटसिला फ्लावा) और हुदहुद (अपुपा इपौप्स) थी, जिसे हम एक कठफोड़वा समझते थे। हम दोनों यह काम कोई दो हफ्तों

तक करते रहे फिर राजू भी हमारी टीम में शामिल हो गयी। हम लोग लान में बैठे किताब के पन्ने पलट रहे थे। राजू मेरी गोद में सिर रखे पेड़ों को निहार रही थी। उसे एक बहुत मधुर आवाज सुनायी पड़ी और वो उस पक्षी को खोजने लगी। उसे एक बड़ी खूबसूरत काली और सफेद रंग की चिड़िया दिखायी दी। हम सबने फौरन ऊपर की ओर देखा और तब हमारा परिचय दर्इया यानि मैग्पाई राबिन (कापसायचस सौलारिस) से हुआ।

हम लोग अपने बगीचे में पक्षी खोजने में व्यस्त रहते और बाद में उनके बारे में पुस्तक में पढ़ते। इसमें कुछ मुश्किल अवश्य आती क्योंकि अक्सर चित्रों और वास्तविक अवलोकनों में काफी अंतर होता। उस समय हमें पक्षियों के नाम भी बड़े अजीब से लगते थे। अक्सर हम पक्षियों को पुस्तक की पृष्ठ संख्या का नाम ही दे देते थे। अब मोहल की रुचि हवाईजहाजों से हटकर पक्षियों को जानने में रम गयी थी। अब वो पक्षियों की पुस्तक को भी हवाईजहाज वाली किताब की तल्लीनता से ही देखता था।

नये पक्षियों को देखने की भूख हमें नये-नये स्थानों पर ले गयी। एक बार हम छोटे कच्छ की खाड़ी में जंगली गधों को देखने गये थे। वापिसी में मोहल ने हमसे कार रुकवायी। उसे गिद्धों - सफेद पीठ वाले (जिप्स बेंगालिसिस) और लंबी चोंच वाले गिद्ध (जिप्स इंडिकस) का एक बड़ा झुंड दिखायी दिया। उसमें एक इकलौता मिस्री गिद्ध (नियोफ्रोन पेरेनोपेट्रस) भी था।

उन दिनों हमारे पास एक सुपर 8, फिल्म कैमरा था। मोहल ने हमसे मरे जानवर और गिद्धों को बिल्कुल नजदीक जाकर फिल्म करने का आग्रह किया। गिद्ध उसके सबसे प्रिय पक्षी थे। मुझे लगा कि बहुत अल्पकाल में ही सुंदरता को लेकर हमारा दृष्टिकोण एकदम बदल गया।

उन दिनों मुझे नियमित रूप से मुंबई जाना पड़ता था। मैं अक्सर ग्रेट वेस्ट्रन बिल्डिंग में स्थित डब्लूडब्लूएफ के दफ्तर में जाया करता था। वहां मेरी भेंट लवकुमार खच्चर से हुयी। वो उस समय वहां के शिक्षा अधिकारी थे और भारत में, शिविर (कैम्पिंग) आंदोलन के प्रणेता थे। हमने हिंडोलगढ़ और कच्छ की खाड़ी के पिरोटन द्वीप में उनके द्वारा आयोजित कुछ शिविरों में भाग लिया।

पक्षी-निरीक्षण की दृष्टि से हिंडोलगढ़ का अनुभव एकदम अद्भुत था। उस समय मोहल की आयु 7 वर्ष की होगी और हमारा छोटा पुत्र संवित 2 साल का होगा। हम सलीम अली से सबसे पहली बार 1977 में, हिंडोलगढ़ में मिले। उन्होंने बच्चों के लिए अपनी पुस्तक *द बुक आफ इंडियन बर्ड्स* पर अपने हस्ताक्षर किये। (इसको हम केवल 'पुस्तक' के नाम से संबोधित करते और इस पर लवकुमार भाई बहुत चिढ़ते।)

हमारा परिचय लवकुमार के चचेरे भाई दरबारसाहिब से भी हुआ। वो हिंडोलगढ़ के राजकुमार थे। सलीम अली और उनके बीच पक्षियों पर चर्चा वाकई में सुनने काबिल होती। एक घटना मुझे अभी भी याद है। हिंडोलगढ़ में पक्षियों को 'रिंग' पहनाने के लिए जाल में एक पक्षी को पकड़ा गया। डा सलीम अली ने तुरंत उसे लेसर व्हाइटथ्रोत (स्लिविया कुरूका) बताया। दरबारसाहिब उनके समीप ही चल रहे थे। वो कुछ देर तक चुप रहे। परंतु फिर उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार हल्के से कहा, "मैं माफी चाहता हूं पर मेरी राय में वो चिड़िया व्हाइटथ्रोत (स्लिविया कुक्यूमिनिस) है।" फिर उन्होंने चिड़िया के कुछ पंखों को दिखाया। "बिल्कुल ठीक, एकदम सही," सलीम अली ने खुश होते हुये अपनी मधुर आवाज में कहा।

अगले कुछ सालों में राजू, बच्चों को और मुझे डा सलीम अली, दरबारसाहिब और लवकुमार भाई के साथ पक्षी-निरीक्षण करने का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। सलीम अली के विनोदी स्वभाव में हमेशा हमें बहुत आनंद आता था।

एक बार मैं और राजू डा सलीम अली और दिलनवाज वारियावा (जो उस समय डब्लूडब्लूएफ, इंडिया की प्रमुख थीं) के साथ बोरिवली गये। वहां पर हमें बसंता यानि लार्ज ग्रीन बारबिट की आवाज सुनायी दी। वो आवाज हमारे लिये एकदम नयी थी और राजू उसे सुनकर बहुत उत्साहित हुयी। उसने उस आवाज की नकल की और सलीम अली से उस चिड़िया का नाम जानना चाहा। सलीम अली ने बहुत गंभीर चेहरा बनाया और राजू को चिढ़ाने के लिये कहा, "मुझे लगता है कि तुमने किसी लकड़बग्घे की आवाज सुनी है!" उसके बाद से राजू ने कभी भी, किसी पक्षी की आवाज की नकल नहीं उतारी।

1976 में, राजू और मैंने थालतेज टेकड़ी पर, एनएफडी-विकसत के कैम्पस पर काम करना शुरू कर दिया था।

हमने नीम (आजादरख्त इंडिका) के पेड़ों से काम शुरू किया जिन्हें एक साल पहले ही मेरी मां मृणालिनी साराभाई ने, गुजरात फौरेस्ट डिपार्टमेंट की मदद से लगाया था। राजू की पेड़ों में विशेष रुचि थी। हम जहां भी जाते वहां पर फारेस्ट नर्सरी से कुछ नये पौधे लेकर आते। अगले कुछ वर्षों में थालतेज टेकड़ी के पेड़ों को हरा-भरा होते देखने का अनुभव भी बड़ा उत्साहित करने वाला था।

पक्षी-निरीक्षण के कारण ही हम प्रकृति को उसके स्वांगीण स्वरूप में देख पाये। सुंदरता की हमारी परिभाषा भी इस बीच तेजी से बदलती रही। हम लोग प्रकृति में कोई सुंदर चीज देखते और फिर उस भावना को अपने कैम्पस में प्रस्थापित करने की कोशिश करते। मैं अक्सर उसका चित्र बनाता और फिर उसके बारे में कैम्पस के प्रमुख माली रामसिंह को समझाता।

हमें बाग-बगीचों में पायी जाने वाली और प्रकृति में पायी जाने वाली 'व्यवस्था' के बीच में हमें काफी अंतर दिखायी पड़ा। जंगल में हमें चीजें एक-दूसरे पर, बेतरतीब और अव्यवस्थित तरीके से उगती नजर आती हैं। जबकि बाग-बगीचों में एक स्पष्ट व्यवस्था होती है। प्रकृति की समझ बढ़ने के साथ-साथ हमें उसमें छिपी एक गहरी 'व्यवस्था' की अनुभूति भी होने लगी। यह व्यवस्था सहक्रियाशीलता (सिनर्जी) पर आधारित होती है। प्रकृति में कोई भी चीज बेतरतीब और निरउद्देश्य नहीं होती।

लवकुमार भाई अक्सर हमें समझाते कि क्यों कोई विशेष पेड़ या बेल एक-दूसरे के पास ही उगते हैं। उनके हरेक आकार और रंग के पीछे कोई मतलब होता है। "आकार हमेशा उपयोगिता का पीछा करता है," मेरे साथी धुन करकरिया मुझ से कहते। एक बार जब डा सलीम अली हमारे कैम्पस में आये तो उन्होंने भी मुझसे पूछा कि यहां कभी बसंतगौरी यानि क्रिम्सन ब्रेस्टिड बारबिट (मेगलआईमा हेमासिफेला) दिखायी दी है या नहीं। उन्हें इस पक्षी के लिए हमारे यहां का परिवेश एकदम उपयुक्त लगा। दो महीने बाद यह पक्षी हमें सच में दिखायी पड़ा! धीरे-धीरे हम प्रकृति के जटिल संबंधों की ओर अधिक संवेदनशील होने लगे।

1975 और 1976 की दीवाली की छुट्टियों में हमने श्रेयस स्कूल के सुंदर कैम्पस में, श्रेयस छुट्टी शिविरों का आयोजन किया था। इस स्कूल के सुंदर कैम्पस को मेरी चाची लीनाबेन ने विकसित किया था। ये शिविर बहुत सफल रहे और इनके कारण मेरा अपने पुराने स्कूल से दुबारा संबंध जुड़ा। क्योंकि हम खुद अपने कैम्पस के विकास में लगे थे इसलिए हम इस सुंदर कैम्पस के ताने-बाने को अधिक गहराई से समझ सके। ऊंचे तेजस्वी आरडूसा (एलियेंथस ऐक्सैल्जा) और छोटे इग्लू जैसे पीलू (सैल्वाडोरा पर्सिका) के पेड़ों की छांव के नीचे हम कुछ कक्षायें चला पाये। इस कैम्पस में बहुत से स्थानीय, देसी पेड़ों को लगाया गया था। किताबों में जिन पेड़ों को सुंदर 'बाग-बगीचे' के वृक्षों की संज्ञा दी जाती है यहां पर उनकी भरमार कम ही थी।

हम बच्चों के लिये 'कैम्पस पर जीवन' नाम का एक कार्यक्रम चलाते थे। इसी के दौरान मेरी अनिल पटेल से भेंट हुयी। वो उस समय स्कूल में खेलकूद के समन्वयक थे। अनिल से जल्द ही गहरी मित्रता हो गयी और वो हर हफ्ते हमारे साथ किसी नयी जगह पर घूमने के लिये आने लगे। हम गुजरात और अन्य स्थानों पर स्थित अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों को देखने गये। लवकुमार भाई हमें उन रोचक जगहों पर जाने की सलाह देते जो अभी पार्क मनोनीत नहीं किये गये थे। इसमें एक जगह थी इडार की पहाड़ी। वहां बड़े-बड़े और भारी पत्थर थे जिनकी अपनी एक खास सुंदरता थी। अहमदाबाद के पास वो जगह हम लोगों के मिलने का प्रिय स्थान बनी।

1977 में, मई की भीषण गर्मी के समय मैंने और अनिल ने गिर अभयारण्य जाने की ठानी। गर्मी के कारण सात साल के मोहल और मेरी भतीजी अपर्णा को लू लग गयी और वो पूरी यात्रा के दौरान गाड़ी की पिछली सीट पर सोते रहे। राजू हमारे साथ आने में असमर्थ थीं क्योंकि उस समय संवित केवल दो वर्ष का ही था।

हमारे साथ मशहूर फोटोग्राफर सुलेमान पटेल थे। वो गिर के एक नाले में ग्यारह शेरों का एक-साथ पानी पीते हुये फोटो लेने के लिए प्रसिद्ध थे। वो एक बढ़िया गाइड थे और उन्होंने हमें जानवरों के पंजों की पहचान करना सिखाया।

शायद डा सलीम अली ने ही सबसे पहले यह टिप्पणी की थी कि अगर गिर के जंगलों में शेर नहीं होते तो वो अवश्य एक सुंदर पक्षी अभयारण्य होता। अन्य चीजों के अलावा हमें यहां पहली बार शाही बुलबुल यानि पैराडाइज फ्लाइकैचर (टर्पसीफोन पैराडिसी) के दर्शन हुये। इस पक्षी को हमने अनेकों बार पुस्तक में देखा था और हम अचरज करते थे कि ये हमें कहां दिखेगी। मैं इसके बारे में राजू को बताने के लिए उत्सुक था। राजू को उस सुंदर यात्रा में

भाग न लेना बहुत खला। उसके बस एक सप्ताह बाद, न जाने कहां से एक नर शाही बुलबुल यानि पैराडाइज फ्लाइकैचर झट से उड़ता हुआ आया और हमारे बेडरूम की खिड़की के सामने वाले खेजड़ी (प्रोसोपिस स्पेसीगेरा) के पेड़ पर आकर बैठ गया। कहां हम लोगों ने मई की चिलचिलाती धूप में 16 घंटे की कठिन यात्रा के बाद इस पक्षी को देखा। और अब वही पक्षी हमारे बगीचे में मौजूद था! मुझे लगा जैसे राजू के पक्षी निरीक्षण में कोई दैवीय शक्ति मदद कर रही हो!

इसी समय अनिल ने हमें लालसिंह राउल नाम के एक व्यक्ति के बारे में बताया जो हर रविवार को श्रेयस में जामनगर से आते थे और छात्रों को कैम्पस में पक्षी निरीक्षण के लिये ले जाते थे। उसके साथ लोग ऐसी बहुत सी नयी चिड़ियों को देखते जो सालों के पक्षी-निरीक्षण के बाद में उन्होंने नहीं देखीं थीं। वो खासकर ऐसी छोटी चिड़ियों को ढूँढने में माहिर थे जो झाड़ियों और घास में आसानी से छिप जाती थीं।

अहमदाबाद में हम नियमित रूप से हरेक इतवार को इंड्रोडा पार्क जाते ही थे। यहां पहली बार हमें घुघू यानि ग्रेट हॉर्नड आउल (बुबो बुबो) को देखने का सुअवसर मिला। हमारे साथ डेविड फर्नांडीस थे जिन्होंने लवकुमारभाई से डब्लूडब्लूएफ के शिक्षा अधिकारी का कार्यभार संभाला था। पिरोटन द्वीप पर लवकुमारभाई के शिविरों ने हमारे लिये एक नयी दुनिया ही खोल दी। यह दुनिया समुद्री जीवों और मूंगा चट्टानों (कोरल रीफ्स) की थी। उन द्वीपों पर सिर्फ बैटे ज्वार-भाटे को आते-जाते देखना अपने आप में एक अचरज भरा नजारा था। पहले मीलों तक पानी का स्तर एकदम उतर जाता और फिर तेजी से वापिस चढ़ना शुरू होता। हमें वहां तरह-तरह के मूंगे ओर स्टारफिश दिखे और ऐसे अद्भुत बहुरूपिये अष्टभुज (आक्टोपस) दिखे जो छिपने की कला में माहिर थे और आपको देखते ही रंग बदल देते थे।

यहीं मिट्टी के तट पर मुझे कच्छ वनस्पतियों में मिट्टी में फुदकने वाले मडस्किपर्स दिखे। इन्हें देख मुझे आदिकालीन प्राणियों - पृथ्वी के पहले जलथली प्राणियों के चित्रों की याद आयी जिन्हें मैंने बचपन में देखा था।

1978 में मुझे मद्रास जाना पड़ा। मैंने रोमोलस विटेकर और गिंडी में उनके सांप उद्यान के बारे में सुना था। उस समय वो महाबलिपुरम के रास्ते में समुद्र के तट के पास कहीं रह रहे थे। क्योंकि हम उनसे पहले से संपर्क नहीं कर पाये इसलिए मेरी बहन रेवती सुबह के समय मुझे कार से वहां ले गयीं।

पक्षी, पेड़, मूंगे एक चीज थे परंतु सांप और मगरमच्छ उनसे बिल्कुल अलग थे। जो काम रौम कर रहे थे मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ। मगरमच्छ फार्म यानि क्रोकोडायल बैंक अभी शुरू के चरण में ही था। जब हम वहां थे तो रेवती का कुत्ता एक घेरे में कूद पड़ा। इससे हम लोग काफी भयभीत हुये! सौभाग्य से उस घेरे में छोटे घड़ियाल थे जो अभी बड़े मगरमच्छ नहीं बने थे।

कुछ ऐसा हुआ कि अगले ही महीने रौम अहमदाबाद के इंडोरा पार्क में आने वाले थे। मैंने उन्हें अपने घर पर रहने का निमंत्रण दिया। उस समय मानसून का समय था और पहली बारिश हो चुकी थी। हम लोग रात का खाना खाकर, अपनी टार्चे लेकर मुख्य सड़क पर 'सर्पदर्शन' के लिये निकलते। हमारी निगाहें वर्षा से तर-बतर सड़कों पर इस प्रकार जमी होतीं जैसे हम वहां चीतों को देखने आये हों। कई झूठी खतरे की घंटियां बजतीं और रौम कहते, "देखो इस टायर सांप को" या फिर "इस रस्सी सांप को"। अधिकांश सांप ट्रकों और कारों से कुचले होते। परंतु हमें सड़कें पार करते हुये कई जिंदा सांप भी दिखे। अक्सर हम अपनी यात्रा से रात को दो बजे वापिस लौटते। परंतु यह अपने आप में एक विलक्षण अनुभव था।

एक दिन रौम थालतेज टेकड़ी वाले कैम्पस में आये। जिस रास्ते से हम रोज गुजरते थे वहां से उन्होंने दो बड़े नाग यानि कोबरा (नाजा नाजा ओक्सियाना) सांपों को खींच कर निकाला। नेहरू फाउंडेशन की पूरी टीम - आफिस के लोग, माली, सब लोग रौम के पीछे-पीछे चले। लोग सांपों की ओर आकर्षित क्यों होते हैं इसे समझना और उसकी शैक्षिक संभावनाओं को समझना मुश्किल नहीं है। छोटा संवित भी अहानिकारक सांपो को छूने से अपने आपको रोक नहीं सका।

हम लोगों ने अहमदाबाद में एक सांप-शो करने का निश्चय किया। मैंने तभी डब्लूडब्लूएफ की अहमदाबाद शाखा शुरू करी थी और उसका पहला अवैतनिक सचिव भी था। हमें डब्लूडब्लूएफ के कार्यक्रम को चलाने के लिये धन की जरूरत थी और मुझे पैसे जुटाने के लिये सांप-शो एक बहुत अच्छा कार्यक्रम लगा।

अक्टूबर 1978 में वीएएससीएससी में सांप-शो आयोजित किया गया और वो बहुत ही सफल रहा। लगभग हरेक अखबार ने पहले पन्ने पर बड़े फोटोग्राफ्स छापकर उसका खूब प्रचार किया। इसके वजह से हम 70 स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं को इकट्ठा कर पाये। 58,000 लोगों ने सांप-शो के टिकट खरीदे।

एक समय तो ऐसा आया जब शो के बाहर खड़ी भीड़ की नियंत्रित करना मुश्किल हो गया और पुलिस ने शो को बंद करने की धमकी दे दी। हमने जल्दी-जल्दी लोगों को बाहर लाइनों में खड़ा किया और क्योंकि उन्हें अंदर जाने में करीब एक घंटा लगता इसलिये मैंने घंटों तक बाहर खड़े लोगों को एक अहानिकारक सांप दिखाया और उसके बारे में बताया।

उसमें से एक स्वयंसेवी कार्यकर्ता का नाम था विजयराज जडेजा। उस दिन हमारे थालतेज कैम्पस के पास से एक सांप पकड़ा गया था। विजयराज उसे अपने हाथ में पकड़े था और लोगों को बता रहा था कि यह एक कैट स्नेक (बोइगा ट्राइगोनाटा) है। जैसे ही रौम ने यह देखा उसने चुपचाप विजयराज से उस सांप को नीचे रख देने को कहा क्योंकि वो अहानिकारक कैट-स्नेक नहीं परंतु बिल्कुल उससे ही मिलता-जुलता विषैला सा-स्केल्ड वाइपर सांप था। उस सांप ने विजयराज को काट लिया था और जल्द ही उसे विष-निरोधक इंजेक्शन लेने के लिये अस्पताल जाना पड़ा।

मैं अस्पताल में उसे देखने गया। मैं उससे उसके पेशे और रुचियों के बारे में पूछा। उसकी वन्यजीवन में बहुत गहरी दिलचस्पी थी खासकर के शिकारी पक्षियों में परंतु वो किसी मार्केटिंग नौकरी में फंसा था जिससे वो असंतुष्ट था। मैंने उससे कहा कि स्पेस ऐपलीकेशन सेंटर के पास ही हमारा एक आम का बाग है और सांप-शो की सफलता के बाद हम वहां पर एक सांप उद्यान विकसित करना चाहते हैं। क्या वो इसमें शामिल होगा? विजयराज ने हां कहा और अगले ही वर्ष सुंदरवन शुरू हो गया।

इसके लिये हमने एक टीम बनायी। अमर सिंह मेरे पिता के समय से आम के बाग की चौकीदारी कर रहे थे। उनके तीनों बड़े लड़कों की इसमें रुचि थी इसलिये नाथुबा, केशुबा और गुलाब तीनों इस टीम के सदस्य बन गये। वो सभी सांप पकड़ने में बहुत माहिर हो गये। बहुत से लोग सांप पकड़ने के लिये हमें बुलाते थे और इस प्रकार धीरे-धीरे करके हमने सांपों का अच्छा संकलन इकट्ठा किया।

परंतु सांपों को खाना खिलाने की दिक्कत थी। हम सभी लोग बहुत सी रातों को मेंढक पकड़ने के लिये जाते थे। मुझ से यह काम नहीं बन पाया परंतु मोहल और अनिल इसमें माहिर हो गये। मोहल अपने रबर के ऊंचे गमबूटस और टार्च लेकर अहमदाबाद के आसपास पानी की ताल-तलैयाओं में हमेशा मेंढक पकड़ने के लिये तैयार रहता था।

अक्टूबर 18, 1979 को डा सलीम अली ने औपचारिक रूप से पार्क का उद्घाटन किया। शायद राष्ट्रीय प्रेस में खबर फैले इसलिये उद्घाटन से एक दिन पहले वहां सबसे बड़े नाग ने एक छोटे नाग को निगल लिया और फिर पांच मिनटों के बाद पूरे सांप को वापिस उल्टी कर दिया। उल्टी करा हुआ सांप अभी भी जिंदा था और वो ऐसे चल रहा था मानों कुछ हुआ ही न हो!

इस लेख में मैं प्रकृति खोजने का कुछ आनंद लोगों के साथ बांटना चाहता था। सुंदरवन ने हमें इसका मौका दिया। एक ऐसा पार्क जहां बहुत से लोग, खासकर बच्चे प्रकृति में खोजबीन शुरू कर सकते हैं।

1 लवकुमार खच्चर, प्रख्यात प्रकृति वैज्ञानिक, मध्य काठियावाड़ में जासदन के राजसी परिवार के सदस्य हैं। कई वर्षों के बाद मैंने उनसे सुंदरवन की जिम्मेदारी संभालने की विनती की। उन्होंने उसे स्वीकारा और 1986 से 1995 तक वे सुंदरवन के निदेशक रहे।

2 धुन करकरिया ने विकसत में ग्राफिक डिजायन केंद्र की शुरुआत की। बाद में यह केंद्र सीईई में आ गया। वो उस केंद्रीय टीम के सदस्य थे जिसने सीईई की स्थापना की। उन्होंने केंद्र के 'इंटरप्रेशन प्रोजेक्ट' को विकसित किया।

3 अनिल पटेल ने 1984 से 1986 तक सुंदरवन के निदेशक का पद संभाला। उन्होंने 1984 से 1995 तक डब्लूडब्लूएफ की उत्तरी गुजरात शाखा के अवैतनिक सचिव का पदभार भी संभाला।

4 बहुत सालों बाद जब लालसिंह राउल सरकारी नौकरी से रिटायर हुये तब मैंने उनसे गुजराती में, पक्षियों पर कुछ निर्णायक पुस्तकें लिखने का आग्रह किया। सीईई ने उन्हें तीन खंडों में छापा है और उनके उत्साहजनक परिणाम मिले हैं जिसमें कुछ पुरुस्कार भी शामिल हैं।

5 विजयराज जडेजा बाद में वदोदरा के कामतीबाई जीवविज्ञान पार्क में संग्रहालय बन गये।

एस्थर डेविड

एस्थर डेविड भारत के प्रसिद्ध चिड़ियाघर विशेषज्ञ रयूबिन डेविड की पुत्री हैं। डेविड ने अहमदाबाद के चिड़ियाघर की स्थापना की और रिटायर होने तक उसके सुपरिंटेंडेंट रहे। उनको प्यार से लोग 'रयूबिन अंकल' के नाम से बुलाते थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन जानवरों की देखरेख और सेवा में बिताया। चिड़ियाघर प्रबंधन और जानवरों के व्यवहार संबंधी विषयों पर उन्होंने मौलिक काम किया। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। 1989 में उनका देहांत हो गया। एस्थर डेविड एक चित्रकार और लेखिका हैं। वो बच्चों के लिये वन्यजीवन से संबंधित पुस्तकें भी लिखती हैं। उन्होंने अहमदाबाद पर आधारित दो उपन्यास लिखे हैं। उनका पूरा काम प्रकृति पर आधारित है।

चिड़ियाघर में बड़े होना

मैं एक चिड़ियाघर में बड़ी हुयी! यह शायद एक सपना जैसा लगे परंतु यह सच है। मुझे विश्वास है कि आप सभी को जानवरों और पक्षियों की कहानियां पसंद होंगी। मुझे भी यह सब अच्छा लगता था। वन्यप्राणी मेरे जीवन का ही एक हिस्सा थे - क्योंकि मेरे पिताजी ने ही अहमदाबाद का चिड़ियाघर स्थापित किया था। उनका नाम रयूबिन डेविड था। वो भारत में चिड़ियाघरों के एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ थे।

मुझे अपने पिता की एक याद है। वो बहुत ही अच्छे और दयालु व्यक्ति थे। चिड़ियाघर शुरू करने से पहले वो घर पर ही कुत्तों का कारोबार और बंदूकों की मरम्मत करते थे। क्योंकि मेरी मां स्कूल में पढ़ाती थीं इसलिये पिताजी ही मेरी देखभाल करते थे। सात साल की उम्र तक पिताजी ने ही मेरे साथ अधिक समय बिताया। उसके बाद उन्होंने चिड़ियाघर की स्थापना की। उसके बाद जब कभी मेरे स्कूल की छुट्टी होती तो वो मुझे अपने साथ लेकर जाते और अपनी सबसे प्रिय चीजों से मेरा परिचय कराते। उन्होंने मुझे जंगली प्राणियों और पक्षियों के बारे में जानने और सीखने के बहुमूल्य मौके प्रदान किये।

जब मैं छोटी थी तब मैं अपने पिता से पूछती थी कि वो चिड़ियाघर विशेषज्ञ कैसे बने। तब वो मुझे अपने बचपन की अनेकों कहानियां सुनाते। उस समय मेरी दादी जिंदा थीं और वो भी अपने पुत्र, यानि पिताजी के बारे में कई और कहानियां सुनाती थीं।

मेरी दादी ने मुझे बताया कि जब मेरे पिता छोटे थे तो उन्हें पक्षियों और जानवरों का बहुत शौक था। उनके घर में बुल-टेरियर प्रजाति का एक कुत्ता, एक हिरन और एक तोता था। स्कूल जाने से पहले मेरे पिता उन जानवरों के साथ खेलते और अपने पिता की उन जानवरों की देखभाल करने में मदद करते - उन्हें खाना खिलाते और सफाई करते। और स्कूल खत्म होने के बाद, घर आने की बजाये मेरे पिता दौड़ते हुये साबरमती नदी पर चले जाते।

वहां वो तैरते थे और नदी का पानी पीने आये सभी जानवरों और पक्षियों को निहारते थे। उन दिनों नदी का पानी एकदम साफ था और उसके दोनों किनारों पर पौधे और पेड़ थे। नदी में पानी पीने के लिये सामान्य जानवर ही आते जैसे गाय, सांड, बैल, भैंस, घोड़े, गधे, कुत्ते और बकरियां। कभी-कभी वहां पर मंदिर के हाथी भी आते। वहां बहुत से पक्षी भी आते जैसे मोर, सारस, बगुले, कौवे, तोते, फाख्ता, कबूतर, बुलबुल, मैना और बत्तखें। मेरे पिता को उन्हें देखने में मजा आता। जब उन्हें स्कूल से लौटने में देरी होती तो मेरी दादी फिक्र नहीं करतीं। उन्हें पता होता कि पिताजी नदी पर गये होंगे।

मेरी दादी भी बड़ी दयालु प्रकृति की थीं और उन्हें भी जानवरों और पक्षियों से बहुत स्नेह था। स्कूल जाते समय वो मेरे पिता को उनके लिये तो खाने का डिब्बा देतीं हीं। परंतु, साथ में वो उन्हें एक और डिब्बा भी देतीं जिसमें साबरमती नदी पर इंतजार कर रहे उनके दोस्तों के लिये अनाज और पुरानी डबलरोटी के टुकड़े होते।

मेरे पिता ने मुझे एक असाधारण अनुभव बताया जो अहमदाबाद के पुराने शहर में घटा था। इस घटना के समय मेरे पिता 16-17 साल के होंगे। वो सामान खरीदने में अपनी मां की मदद कर रहे थे। अचानक उन्हें बंदरों की 'व्हूप, व्हूप' की आवाजें सुनायी पड़ीं। उन्हें सड़क पर एक बंदर का बच्चा पड़ा हुआ दिखा, जो बिजली के तारों से करंट का झटका लगने के कारण मर गया था। तभी फौरन उस बच्चे की बंदर मां दौड़ती हुयी वहां पहुंची और उसने अपने

बच्चे को बाहों में उठा लिया। इससे सारा ट्रैफिक जाम हो गया। बाकी बंदर भी वहां आ गये और उसके चारों ओर बैठ गये, क्योंकि आगे क्या करें यह उन्हें पता नहीं था।

मेरे पिता उस समय एक युवा थे और इस घटना का उन पर गहरा असर हुआ। उस दिन वो बहुत उदास रहे। उस दिन उन्होंने अपने आपको बहुत छोटा और असमर्थ पाया। परंतु उन्होंने यह पक्का निश्चय किया कि वो बड़े होकर जानवरों के भलाई के लिये कुछ अवश्य करेंगे। वो जल्दी से बड़े हो जाना चाहते थे। परंतु जब वो बड़े हुये तो अचानक उनकी रुचियां बदल गयीं। उन्हें शरीर को हष्ट-पुष्ट रखने और बंदूकों में मजा आने लगा। वो पक्षी और कुत्ते पालते परंतु उन्हें साहसिक कारनामों की जरूरत महसूस होने लगी। उस समय उनकी दोस्ती गुजरात के कई राजकुमारों से हो गयी और वो उनके साथ शिकार खेलने जाने लगे। लोग उन्हें खोजते हुये आते क्योंकि वो जंगल में जानवरों को ढूँढने में बहुत माहिर थे।

उन्हें बंदूकों और राइफलों का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। जैसा कि उस उम्र के बहुत से लोगों के साथ होता है वो जो कुछ भी कर रहे थे उसे वो बुरा या खराब नहीं समझते थे। इससे मेरी दादी परेशान रहतीं परंतु पिता उनकी बात नहीं सुनते और अपनी मनमानी करते।

परंतु शायद हरेक की जिंदगी का कुछ मकसद होता है और तीन घटनाओं ने मेरे पिता के जीवन को एक नया मोड़ दिया। पहली घटना जंगल में एक तेंदुए के साथ हुयी। जंगल में पिता एकदम अकेले थे और अचानक उनके सामने एक तेंदुआ आ गया। उन दोनों ने एक-दूसरे को घूर कर देखा और फिर तेंदुआ अपने आप जंगल में गायब हो गया। मेरे पिता उसे मारना नहीं चाहते थे। दोनों में से किसी ने भी एक-दूसरे को नुकसान नहीं पहुंचाया।

दूसरी घटना तब घटी जब किसी ने एक खरगोश को मारा और मेरे पिता ने उसे बचाने की कोशिश की। परंतु वो उसमें सफल नहीं हुये क्योंकि खरगोश एक बेहद कंटीली झाड़ी में फंसा था। इससे पिता को बहुत दुख हुआ। तीसरी घटना में उनके मित्रों ने एक गर्भवती हिरणी को गोली से मारा। इस घटना ने मेरे पिता को हिला दिया और उन्होंने निर्णय लिया कि वो जीवन में कभी भी शिकार नहीं करेंगे।

उसके बाद वो अहमदाबाद वापिस आये। वहां उन्होंने अपनी सारी बंदूकें बेंच दीं और स्वतः से प्राणी विज्ञान का अध्ययन करने लगे। और क्योंकि वो कुत्तों के विशेषज्ञ थे इसलिये लोग अपने बीमार कुत्तों को उनके पास इलाज के लिये लाने लगे।

इसी समय अहमदाबाद म्यूनिसिपिल कारपोरेशन ने एक चिड़ियाघर स्थापित करने की सोची। उस समय तक मेरे पिता अपने काम के लिये काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। परंतु उन्हें चिड़ियाघर स्थापित करने के लिये किस प्रकार बुलाया गया और उन्होंने कंकारिया झील के पास की पहाड़ी को कैसे चिड़ियाघर में बदला यह अपने आप में एक रोचक कहानी है।

एक दिन मेयर, कमिश्नर, और स्टैंडिंग कमेटी के चेयरमैन और अहमदाबाद म्यूनिसिपिल कारपोरेशन के कुछ अधिकारी हमारे घर पर आये। मेरे पिता साधारण काम के कपड़े पहने थे - एक धारीदार पजामा और एक बुशर्ट। उन्होंने अधिकारियों से बैठने को कहा क्योंकि वो उस समय एक बीमार कुत्ते को इंजेक्शन देने जा रहे थे। मैं उस समय छह साल की थी और कुत्ते को पकड़कर रखने में अपने पिता की मदद कर रही थी। मेरे पिता को अधिकारियों की मंशा का जरा भी अंदाज नहीं था। मेरी मां ने अधिकारियों को पानी दिया और उनसे चाय या काफी पीने के लिये आग्रह किया। कुत्ते को इंजेक्शन देने के बाद मेरे पिता ने तसल्ली से अपने हाथ धोये और उसके बाद ही उन्होंने अधिकारियों से बातचीत की।

इस बीच में अधिकारियों ने मेरे पिता को चिड़ियाघर का सुपरिंटेंडेंट नियुक्त करने का निर्णय ले लिया था - क्योंकि उन्होंने अधिकारियों से बात करने से पहले एक बीमार कुत्ते का पहले इलाज किया था।

चिड़ियाघर की शुरुआत के समय पिताजी के पास कुछ तोते, मछलियां, कछुए और केवल एक मोर था। मुझे याद है जब वो पहली बार चिड़ियाघर में एक तेंदुआ लाये। जानवर के सुख-चैन के लिये वो अक्सर उसे शाम को अपने साथ घर ले आते थे। तेंदुआ अभी छोटा ही था। मेरे साथ और कुत्तों के साथ उसका बहुत दोस्ताना व्यवहार था। मुझे तब बहुत मजा आया जब मैंने पहली बार तेंदुए को छुआ और उसने मेरा हाथ चाटा। इस प्रकार मैंने जंगली जीव-जंतुओं को समझना सीखा।

धीरे-धीरे पिताजी का संकलन बढ़ता गया। उसमें शेर, चीते, हिरन, जेबरा, कंगारू, तरह-तरह के पक्षी और सांप जुड़ते गये और वो एक बहुत बड़ा चिड़ियाघर बन गया। वो पूरे एशिया का सबसे अच्छा चिड़ियाघर था क्योंकि पिताजी हरेक जानवर की खुद देखभाल करते थे। उनको शेरों और चीतों के पिंजड़ों में घुसते देखना एक आम बात थी। उन्होंने सहवास को लेकर कुछ प्रयोग भी किये। इनमें कुत्ते, बंदर और शेर बिना एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाये एक-साथ रहते थे।

हरेक सुबह वो आठ बजे घर से निकल जाते और फिर रात को आठ बजे वापिस लौटते। उन्होंने चिड़ियाघर में रहने का घर स्वीकार नहीं किया क्योंकि वो अपनी व्यक्तिगत घरेलू जिंदगी में दखल नहीं चाहते थे। परंतु जब कभी जानवर बीमार होते तब तनाव के बहुत से क्षण आते। तब पिताजी बेचैन हो जाते और खाना-पीना छोड़ देते। अगर जानवर मर जाता तो वो कई दिनों तक सदमे में रहते।

वो चिड़ियाघर के जानवरों से इतना प्यार करते थे कि जब मौंटू नाम का शेर बीमार पड़ा तो पिताजी के गले से एक कौर भी नहीं निगला गया। वो तब तक बहुत उदास रहे जब तक मौंटू ठीक नहीं हो गया।

दो चिपैंजी थे - एमिली और गाल्की, जिनके लिये पिताजी ने एक विशेष मीठी चटनी (जेली) बनायी थी। मैं अक्सर गाल्की को अपने कंधे पर बिठाकर चिड़ियाघर में घूमती थी। पिताजी ने मुझे गाल्की को बालपेन से चित्रकारी करना सिखाने के लिये प्रेरित किया। मैंने गाल्की का हाथ पकड़ कर उसे चित्रकारी सिखायी। ये सुखद यादें अभी भी मैंने संजो के रखी हैं।

कभी-कभी चिड़ियाघर में तनावपूर्ण क्षण भी होते थे। एक बार दो चीते अपने पिंजड़ों से निकलकर बाहर आ गये। पिताजी अपने सहायक बाबू की मदद से उन दोनों चीतों को पिंजड़ों में वापिस लाये। एक बार दो बड़े अजगर कहीं से शहर में घुस आये! पिताजी ने उनको भी पकड़ कर सुरक्षित स्थान पर भेजा।

उन्होंने कंकारिया झील में से एक आदमखोर मगरमच्छ को पकड़ा। इन सभी अवसरों पर उन्होंने कभी भी बंदूक का सहारा नहीं लिया।

इन कहानियों की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने पूरे जीवन में पिताजी को किसी भी जानवर ने कभी भी कोई नुकसान नहीं पहुंचाया।

इसके साथ-साथ पिताजी बहुत विनोदी और मजाकिया स्वभाव के थे। एक बार एक राजनेता ने पिताजी की मेज पर रखे शतुरमुर्ग के अंडे को देख बड़ी उत्सुकता दिखायी। पिताजी ने उन्हें बताया कि दुनिया के एक हिस्से में भैंस इस तरह का अंडा देती हैं!

हमारे घर में मछलियों के कांच के घर के ऊपर मधुर गीत गाने वाली एक कैनरी चिड़िया रहती थी। पिताजी ने अपने मित्रों को मनवा लिया कि मछलियां भी पक्षियों की तरह गा सकती हैं! एक बार जंगल विभाग के लोग हमारे घर में रखे पारितोषिक और मैडिलों की एक सूची बना रहे थे। वहीं एक कांच की बोतल रखी थी जो मुर्गे जैसी रंगी थी। पिताजी की बात पर अफसरों ने यह मान लिया कि वो बोतल असल में एक खास प्रजाती की चिड़िया थी!

एक आप्रेशन के बाद मेरे पिताजी की आवाज जाती रही। परंतु मेरे पिता फिर भी अपने पालतू जानवरों के बहुत करीब रहते। वो अपने हाथ से ही उन्हें आदेश देते और उन्हें प्यार करते। और जानवर भी उनसे अथाह प्रेम करते। मेरे पिताजी ने मुझे प्रकृति से प्रेम करना और उसकी इज्जत एवं संरक्षण करना सिखाया।

पिताजी के साथ बड़े होना अपने आप में एक बड़ी शिक्षा थी। उन्होंने मुझे उन सभी चीजों को प्यार करना सिखाया जो इंसानों के लिये महत्वपूर्ण हैं जैसे प्रकृति, साहित्य, चित्रकारी, मूर्तिकला, मिट्टी का काम, संगीत, कविता, इतिहास, मानव-विज्ञान, वास्तुकला, लोक कलायें, नृत्य, सिनेमा, संस्कृति, कुत्ते, पेड़, मौसम और सबसे महत्वपूर्ण मूल्य - मानवता।

मेरे लिये मेरे पिता टार्जन के समान थे। उन्होंने मुझे जीवन को शक्ति, व्यवहार-कुशलता और विनोदी तरीके से जीने के सबक सिखाये।

प्रोफेसर एच वाय मोहन राम

प्रोफेसर एच वाय मोहन राम ने कई क्षेत्रों में प्रतिभा हासिल की है। उनका जन्म 1930 में हुआ। 1953 से 1995

तक उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र पढ़ाया और वनस्पति विज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों में 35 पीएचडी के छात्रों को गाइड किया। उन्होंने भारतीय विज्ञान को समृद्ध बनाया - शिक्षक, संपादक, पाठ्यपुस्तक लेखक, शैक्षणिक फिल्में बनाकर विज्ञान के लोकप्रियकरण, प्रतिभाओं को बढ़ाने वाले, चिंतक और योजनाकार की हैसियत से। शैक्षणिक संस्थायें, विद्वान समितियां और अनुदान संस्थायें उनके महत्वपूर्ण योगदान से लाभांवित हुयीं। वो भारत की चारों महत्वपूर्ण विज्ञान अकादमियों के सदस्य हैं। वो वनस्पतिशास्त्र और प्राणिशास्त्र सर्वे की शीर्ष सलाहकार समितियों और **मैन एंड बायोस्फीयर प्रोग्राम** (1990-1996) के चेयरमैन रहे हैं। प्रोफेसर मोहन राम कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित हैं। आजकल वो दिल्ली विश्वविद्यालय के पर्यावरण (जीवशास्त्र) विभाग में इंसा (इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी) के ज्येष्ठ वैज्ञानिक हैं।

एक वनस्पतिशास्त्री का मनन-चिंतन

मैं मैसूर के सुंदर शहर में जन्मा। घर में संगीत, पुस्तकों के साथ-साथ कई और बच्चे भी थे। हम **आने करोटी** (गजशाला) घूमने जाते जहां हमें बहुत मजा आता। गजशाला में अलग-अलग आयु के चालीस से भी अधिक हाथियों को ट्रेनिंग दी जाती थी। पौधों में मेरी रुचि मेरी मां ने जगायी। उन्हें खुद बागबानी का बहुत शौक था। स्कूल में हमारे जीवविज्ञान के शिक्षक श्री आर एक चक्रवर्ती ने हमसे मेंढकों के अंडे और टैडपोल इकट्ठे करवाये और अंडे से मेंढक के अद्भुत रूपांतरण से हमें परिचित कराया। बिलिरंगा पहाड़ियों पर मैं कुछ समय अपने चाचा के साथ रहा। यह वन्यजीवन का मेरा पहला अनुभव था। मैंने हाथियों के झुंड को एक खेत को रौंदते देखा। वहां हाथियों को भगाने के लिये छोटे बच्चे पेड़ों पर बैठकर फटे बांसों को हिलाकर तेज आवाज पैदा कर रहे थे।

मैसूर के कालेज में मेरी भेंट डा एम ए राऊ और श्री बी एन एन राव से हुयी। दोनों ही बेहद प्रतिभाशाली फील्ड-वनस्पतिशास्त्री थे। पौधों को खोजते हुये वे दूर-दूर तक साइकिल यात्रायें करते। पौधों के आकार और वर्गीकरण का उन्हें गहरा ज्ञान था। जो सबसे महत्वपूर्ण सबक मैंने उनसे सीखा वो था - सरसरी निगाह और बारीक अवलोकन के बीच का अंतर। मैंने उनसे बहुत से पौधों के लैटिन नाम, वर्गीकरण और उनके उपयोगों के बारे में भी सीखा।

स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद 1951 में मैंने आगरा के बी आर कालेज में एमएससी में दाखिला लिया। यह वैसे तो एक सामान्य कालेज था परंतु यहां के शिक्षक बहुत श्रेष्ठ, दयालु और अपने विषय में रुचि रखने वाले थे। एक साफ, हरे-भरे शहर से एक गंदे, धूल भरे, आधे रेगिस्तानी, खारे पानी वाले शहर में आना मुझे काफी दुश्वार लगा। मैं अक्सर सोचता - ताजमहल, मैसूर में क्यों नहीं बना! आगरा में मुझे पहली बार सैल्वाडोरा, टैमैरिक्स, स्वाईदा, सैल्सोला और कैपेरिसिस प्रजातियों के पेड़-पौधे देखने का अवसर मिला। ये पेड़ समय के साथ यहां के सूखे, गर्मी, और नमकीन मिट्टी के आदी हो गये थे। यहां प्रोफेसर बहादुर सिंह ने शोधक्रिया से मेरा परिचय कराया। उन्होंने मुझे शोध में सैद्धांतिक कड़ाई का महत्व भी समझाया।

आगरा में मुझे बताया गया कि साइकस रेवोल्यूटा के जो पौधे (20 करोड़ वर्ष पहले यही वनस्पति सबसे अधिक मात्रा में पायी जाती थी) ताजमहल के बगीचे में लगे हैं वो सभी मादा हैं और नर पौधे के अभाव में उनमें बीज नहीं पैदा हो सके हैं। मुझसे मैसूर से एक नर पौधा लाने को कहा गया। मैंने मैसूर महल के बगीचे से कैसे करके एक पौधा चुराया और फिर उसे कई बोरियों की तहों से ढंका। उसमें तेज बदबू आ रही थी इसलिये रात के समय जब मैं सोया हुआ था तो ट्रेन के सहायत्रियों ने उस बोरे को डिब्बे से बाहर फेंक दिया। शायद इसी कारण ताजमहल परिसर में साइकैड के पौधे बूढ़े होकर भी कुंवारे हैं! एक बार यमुना के तट पर वनस्पतियां इकट्ठा करते समय मैं बलुआ दलदल में फंस गया। अगर मेरे प्रोफेसर ने तत्काल अपनी धोती खोलकर उसे मेरे चारों ओर लपेटकर मुझे जल्दी से नहीं खींचा होता तो शायद मैं आज इस लेख को लिखने के लिये जिंदा नहीं बचता!

एमएससी की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मैं खुशनसीब था कि मुझे तुरंत दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र के लेक्चरर की नौकरी के लिये चुन लिया गया। वहां मैं प्रोफेसर पी माहेश्वरी के प्रभाव में आया जोकि अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वनस्पतिभ्रूण वैज्ञानिक थे। विश्व भर के छात्र उनकी लिखी पुस्तकें पढ़ते थे। माहेश्वरी एक संपूर्ण वनस्पतिशास्त्री थे - इस विषय की प्रत्येक शाखा में उनकी रुचि थी। वो आत्मसंयमी, बेहद मेहनती और व्यवस्थित वैज्ञानिक थे और उन्होंने दिल्ली में वनस्पतिशास्त्र का बहुत ही समृद्ध विभाग स्थापित किया था। माहेश्वरी हमेशा उपयोग, तरीके, समयबद्धता, सफाई और वैज्ञानिक शोध की शुद्धता पर जोर देते थे। उनको देखकर ही मैंने

वनस्पतिशास्त्र को एक पेशे के रूप में अपनाने का निर्णय लिया। मैंने उन्हीं की देखरेख में अपनी डाक्ट्रेट की। इसके अलावा मैंने उनसे तीन महत्वपूर्ण बातें सीखीं : सीखने की सीख, काम करने की सीख और जिंदगी जीने की सीख।

1963 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने हमारे विभाग की पदोन्नति की और वो **सेंटर आफ एडवांस्ड स्टीज** के नाम से जाना जाने लगा। प्रोफेसर माहेश्वरी को **फेलो आफ द रायल सोसायटी** का सदस्य चुना गया। हमें इससे बहुत खुशी और गर्व की अनुभूति हुयी। यहां एक ऐसा वनस्पतिशास्त्री था जो कभी भी अपने देश से बाहर नहीं गया और जिसने हम सब में आत्मविश्वास जगाया कि कड़ी मेहनत और लगन से देश में रह कर भी विश्व-स्तरीय शोध करना संभव है।

वनस्पतिशास्त्र पढ़ाते समय मुझे सबसे ज्यादा मजा छात्रों को फील्ड में वनस्पतियां दिखाने ले जाने में आता था। इसके दौरान लंबी यात्रायें, खेल, गाना, साथ-साथ खाना और बस मजा ही मजा होता। इसमें कृत्रिम बंधन टूट जाते और छात्र, मित्र बन जाते। आज जब भी मैं अपने पुराने छात्रों को मिलता हूँ (उनमें से बहुत से भारत और विदेशों के विश्वविद्यालयों में ऊंची पदवियों पर आसीन हैं) तो उन सभी को वही दिन याद आते हैं जब वनस्पतिशास्त्र का मतलब था जंगलों में घूमना, बड़े पेड़ों को देखना, नये पौधों को खोजना और असाधारण प्राकृतिक घटनाओं का अवलोकन करना और इस सब का आनंद लेना। आजकल वनस्पतिशास्त्र की पढ़ाई मंहगी प्रयोगशालाओं में सिमट गयी है। यहां अब न्यूक्लिक एसिड का निचोड़ निकाला जाता है और आणविक समता और अंतरों को जानने के लिये क्षार की जोड़ियों के क्रमों को मिलाया जाता है।

इन यात्राओं के दौरान मुझे सैकड़ों अनुभव हुये। एक बार मेट्टूपल्याम और ऊटी स्टेशनों के बीच में छोटी ट्रेन अपनी पटरी से ही उतर गयी जिससे लोगों में दहशत फैल गयी। एक बार मैं मसूरी में एक पहाड़ी से 15 मीटर नीचे फिसला परंतु भाग्यवश एक पेड़ की दो शाखों के बीच में आकर ठहर गया। मुझे नीले रंग की जैकट पहनने का शौक है - शायद इसी कारण रात के समय ट्रेन यात्रा करते समय लोग मुझे टिकट कलेक्टर समझ बैठते और सीट के लिये मुझे रिश्वत तक देने को तैयार हो जाते!

एक बेहद काबिल वैज्ञानिक जिनका प्रभाव मुझ पर पड़ा वो थे प्रोफेसर एफ सी स्टीवर्ड। उनके साथ मुझे और मेरी पत्नी को फुल्ब्राइट फेलोस की हैसियत से कौर्नल विश्वविद्यालय में (1958-60) काम करने का अवसर मिला। उन्होंने मेरे सोच को व्यापक बनाया और पौधों में व्यवस्था और एकीकरण की मेरी समझ को गहरा किया। 50 साल से भी ऊपर के अपने वनस्पतिशास्त्र के पेशे में मुझे ऐसे बहुत से प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और लोगों से मिलने का मौका मिला है जिन्होंने जीवविज्ञान और संरक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम किये हैं।

बहुमुखी प्रतिभा, शोध के प्रति समर्पण, उर्जा, वृहत रुचियों और सृजनशीलता के लिये स्वर्गीय प्रोफेसर बी जी एल स्वामी (1916-81) का नाम सर्वोपरी होगा। वो पूरे विश्व में पौधों के ढांचों और भ्रूणविज्ञान पर किये अपने शोध के लिये प्रख्यात थे। स्वामी एक प्रेरक शिक्षक, चिंतक, कला इतिहाकार, पुरालेखशास्त्री, चित्रकार और इसके अलावा कन्नड के अभूतपूर्व लेखक थे।

मेरी राय में किसी भी वैज्ञानिक ने बायोडायवर्सिटी, आकृति-विज्ञान, वर्गीकरण, पौधों के प्रचार पर स्वामी जैसा नहीं लिखा होगा। और यह सब उन्होंने कन्नड में एक बहुत सुंदर और पठनीय शैली में लिखा है।

उनकी पुस्तक **हसूरुहोन्नू** (हरा सोना) पश्चिमी घाट पर उनकी छात्रों के साथ यात्राओं पर आधारित है। इसमें वो आपका परिचय कई बेहद रोचक पौधों से, उनके रूप और विशेषताओं, प्रयोगों, किंवदंतियों, संरक्षण स्थिति और कन्नड और तमिल साहित्य में उनके स्थान से कराते हैं।

उन्होंने विनोदी तरीके से कहानी सुनाने की शैली का उपयोग किया है। स्वामी ने कन्नड में विज्ञान के लोकप्रियकरण में एक नयी पहल शुरू की। उन्हें 1978 में साहित्य अकादमी का पुरुस्कार मिला जो कि किसी भी भारतीय वैज्ञानिक के लिये एक रिकार्ड है।

मेरा हीरो कौन है? जिस वनस्पतिशास्त्री का मैं सबसे बड़ा प्रशंसक हूँ वो हैं रूसी वनस्पतियों के प्रसिद्ध खोजी, आनुवंशिक वैज्ञानिक और जीव-भूगोलशास्त्री निकोलाई इवानोविच वैवीलोव। उन्होंने पौधों के संकलन के लिये पुराने रूस और 50 अन्य देशों में यात्रायें कीं (1920-30)। उन्होंने अनाज, दालों, आलुओं आदि के बीजों के 50,000 नमूने इकट्ठे किये। उगाये हुये पौधों के उत्पत्ति केंद्रों (प्राथमिक विविधता के केंद्र) के वही पहले प्रणेता थे। आजकल हम

जिन जीन-बैंक्स की बात सुन रहे हैं वो उन्हीं की दृष्टि का फल हैं।

यह बड़े दुख की बात है कि उस समय लायसेंको के बहुत अधिक राजनैतिक प्रभाव और किसी भी वैज्ञानिक विरोध की असहनशीलता के कारण वैविलोव को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर जासूसी का और कृषि की उपज को हानि पहुंचाने का इल्जाम लगाया गया। उन्हें घोर अपमान सहना पड़ा और उनकी मृत्यु सारातोव जेल में हुयी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान लेनिनग्राद की 900 दिन लंबी घेराबंदी में जो वैज्ञानिक वैवालोव के गेहूं संकलन की चौकीदारी कर रहा था वो भूख से तड़प कर मर गया लेकिन उसने उन नमूनों को नहीं खाया।

मैं अपनी वनस्पतिशास्त्री पत्नी मानसी का भी सदा ऋणी रहूंगा। उनकी पौधों से संबंधित कभी न पूरी होने वाली उत्सुकता, तेज दिमाग और गहरा प्रेम मुझे हमेशा सीखने के लिये प्रेरित करता रहा। वो घर में दुर्लभ पौधों को उगातीं और फिर खुले दिल से उन्हें बांटतीं। गुरुपत्नी की हैसियत से मेरे छात्रों पर उनकी सदा कृपादृष्टि रहती। हम दोनों देश और विदेश में अनेकों वनस्पति अध्ययन की यात्राओं पर साथ-साथ गये। वो हमेशा मेरे विचारों में रहती हैं। जब मैं किसी को नये पौधों, नयी जगहों और नये मित्रों के बताना चाहता हूं उस समय मुझे उनकी बहुत याद आती है।

बहुत से लोगों के लिये वन्यजीवन (वाइल्डलाइफ) का मतलब शेर, चीते, हाथी, दरियाई घोड़ा, गैंडा, गौड़ और वनमानुष होते हैं। परंतु जीवविज्ञान में, कोई भी ऐसा जीव जिसे आप पालतू न बना सकें - चाहें वो कोई पौधा हो, प्राणी हो या सूक्ष्मजीव हो, वो वाइल्डलाइफ है। जनता का ध्यान आकर्षित करने में शायद एक खरपत के पौधे की अपेक्षा किसी चीते, शेर या रंगबिरंगी तितली का पोस्टर अधिक सफल होगा। परंतु वनस्पतिशास्त्रियों की निगाहों में बड़े सितारे हैं - सागुआरो कैक्टस, लेडी स्लिपर आर्किड, पिचर प्लांट, और अजीब दिखने वाला वेलविटसिया (नामिब के रेगिस्तान में यह पौधा ओस की बूंदों से पानी सोखकर जिंदा रहता है) या फिर एक नहीं, एक-साथ दो-दो नारियल। इनके बारे में पढ़ने से तो केवल रुचि का विस्तार होता है परंतु इन्हें इनके ही प्राकृतिक परिवेशों में खोजना जीवन का एक अनूठा अनुभव होता है। आपने भीमकाय कमल (विक्टोरिया एमेजोनिका) के चित्र को किसी उष्णकटिबंधी (ट्रॉपिकल) बगीचे में उगते अवश्य देखा होगा। इसकी जड़े पानी में होती हैं (यह पानी का सबसे बड़ा पौधा है) और इसकी विशाल पत्तियों (2 मीटर व्यास की) के किनार थाली जैसे मुड़े होते हैं। पत्ती ने निचले भाग पर नुकीले कांटें होते हैं और इसकी मोटी नसें मध्य से निकलकर कई बार अठखेलियां करती हुयी किनार तक पहुंचती हैं। इसकी वयस्क पत्तियां एक पंद्रह साल के बच्चे का भार संभाल सकती हैं!

68 वर्ष की आयु में भी मैं तब बहुत उत्साहित हुआ जब मुझे 1998 में ब्राजील के पास मानुआस में एमेजोन नदी पर इस विशाल कमल को उसके प्राकृतिक परिवेश में देख पाया। मैंने नौका चालक से पत्तों के पास जाना का आग्रह किया जिससे कि मैं उन्हें छू सकूं। उनके फूलों का रंग सफेद और व्यास 20 सेंटीमीटर के करीब होता है। वो शाम को ही खिलते हैं। इस समय फूलों का तापमान, आसपास की हवा से 100 डिग्री सेंटीग्रेड से भी अधिक हो जाता है और उनमें से फलों की तेज सुगंध आती है। तब बहुत सारे राजवंशी भृंग (बीटिल) फूलों की ओर आकर्षित होते हैं। ये बीटिल फूलों के ऊतकों (टिश्यू) पर लगे ढेर सारे मांड को खाती हैं।

सूर्यास्त के बाद फूलों की पंखुड़िया बंद हो जाती हैं और अगले दिन तक के लिये उनमें ये सारे भूखे कीड़े कैद हो जाते हैं। फिर इन पंखुड़ियां का रंग गुलाबी हो जाता है, वो शाम के समय खुलती हैं और तब बीटिल्स परागकणों के साथ बाहर निकलते हैं। ये बीटिल्स उसके बाद सफेद फूलों में जाती हैं और इस प्रकार उनका परागण होता है। मैंने इस विशाल पौधे के बिल्कुल पास ही पानी के सबसे छोटे पौधे वौल्फिया ब्राजीलिनिस को तैरते हुये भी देखा।

एमेजोन नदी के तट पर 8-10 मीटर ऊंचे पेड़ों का पानी में डूबना (कापोक, चिरोसिया आदि) एक और अचरज में डालने वाली बात थी। मुझे बताया गया कि ये पेड़ 5-6 महीने तक वार्षिक बाढ़ के प्रकोप को सह लेते हैं।

चिड़ियाघरों और बाग-बगीचों में ही अक्सर हमें 'नान-वाइल्ड' प्रजातियां देखने को मिलती हैं। कुछ ऐसी प्रजातियां हैं जो अब अपने प्राकृतियों परिवेशों से लुप्त हो गयी हैं और केवल संरक्षित स्थानों पर ही जिंदा बची हैं। मैं आपको श्रीलंका में कैंडी के पास स्थित पेरेडिनिया वनस्पति उद्यान की अपनी रॉमाचक यात्रा के बारे में कुछ बताना चाहूंगा।

इस बगीचे में वैसे तो कुछ बहुत ही आकर्षक पौधे हैं परंतु इसमें सबसे बहुमूल्य हैं दो कतारें जिनमें दो-दो नारियलों वाले पेड़ लगे हैं। डबल-नारियल (लोडोइसिया माल्लिकविका या एल सेचिल्लैरिकम) एक बहुत ही रोचक पाम है। इन 30 मीटर ऊंचे पेड़ों की पंखेनुमा पत्तियां होती हैं और वे 300 वर्ष तक जीवित रहते हैं। अपने प्राकृतिक रूप

में ये पेड़ सेयचिल्लीज (भारतीय महासागर में ग्रेनाइट की पहाड़ियों पर स्थित द्वीप समूह) में पाये जाते हैं। ये पेड़ लगभग लुप्त प्रजातियों की श्रेणी में हैं इसलिये कानून द्वारा इनको संरक्षण मिला है। नर और मादा पेड़ अलग-अलग होते हैं। मादा पेड़ों के फल हरे रंग के बड़े हृदय जैसे होते हैं। उनका भार 15-20 किलो होता है और उन्हें पकने में 5-8 साल लग जाते हैं। त्वचा के नीचे रेशों की एक दरी होती है जो एक भूरे हड्डियों का एक कवच होता है जो आकार में नितंबों जैसा दिखता है। इस कवच के अंदर दो खंडों वाला बीज होता है - जो वनस्पति जगत का सबसे बड़ा (50 सेमी) और सबसे भारी बीज होता है। मरे बीज अक्सर तैरते हुये भारत के समुद्री तटों पर आ जाते। लोग इन्हें उत्सुकता से इकट्ठा करते। इन्हीं कवचों को भारत में साधु अपने कर्मंडल के लिये उपयोग करते हैं।

फ्रेंच जलसेना के कप्तान लजारे पिकौल्ट वो पहले गोरे इंसान थे जिन्होंने 1977 में, पहली बार डबल-नारियल के पेड़ को खोजा।

मैंने सामान्य वनस्पतिशास्त्र, वर्गीकरण, भ्रूणविज्ञान, शरीरविज्ञान, संरचना-विकास, टिश्यू कल्चर और पौधों के उपयोग और संसाधन संबंधी इकोनामिक-बाटनी पढ़ायी है। शोध की मैंने कोई एक निश्चित दिशा नहीं चुनी है। मैंने समय के फैशन को नकारा और हमेशा अपनी रुचि के अनुसार काम किया। हमारी प्रयोगशाला से 250 से भी अधिक शोधपत्र प्रकाशित हुये हैं। ये उन 35 शोध छात्रों की साधना का फल था जो मेरे साथ काम कर रहे थे।

मेरी मां ने 1940 के शुरुआत में मैसूर में बच्चों के लिये एक क्लब बनाया था जिसका नाम था **मक्कला कूटा**। उनका मुख्य उद्देश्य बच्चों को स्वतंत्रता आंदोलन, गरीबी, अशिक्षा, लिंगों के बीच की गैरबराबरी से अवगत कराना था। साथ-साथ जनमानस को जगाने, लिखने, नाटक, बोलने और गाने की कुशलतायें विकसित करना था। उन्हें लगता था कि स्कूल व्यक्तित्व के इन पक्षों को नजरंदाज करते हैं।

इन गतिविधियों का मेरे कार्यकारी जीवन पर भी गहरा हुआ। इसीलिये मैंने कभी भी बच्चों के साथ मुलाकात के किसी भी निमंत्रण को नहीं ठुकराया। मुझे इस बात का संतोष है कि मैं चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट के न्यासी (ट्रस्टी) और नेशनल साइंस सेंटर के चेयरमैन (6 वर्ष) और सेंटर फार इन्वायरनमेंट इड्यूकेशन की नियंत्रक सभा के सदस्य की हैसियत से बच्चों के लिये कुछ कर पाया।

एक और कठिन किंतु संतोषजनक काम था 11वीं और 12वीं कक्षाओं के लिये जीवविज्ञान की किताबें लिखना। इसके लिये एनसीईआरटी ने एक समिति बनायी थी और मैं उसका चेयरमैन था। इन पुस्तकों को लिखने वाले लेखकों की टीम का उद्देश्य बच्चों में जांच-पड़ताल, सृजनता, निष्पक्षता, प्रश्न पूछने का साहस, कलात्मकता और पर्यावरण के प्रति संवेदना की प्रवृत्ति पैदा करना था।

जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं तो मुझे लगता है कि यह एक बहुत ही कठिन काम था। यह बीड़ा मैंने प्रोफेसर सी एन आर राव - जो इस देश के सबसे सम्मानित रसायन वैज्ञानिक हैं के कहने पर उठाया था। इस कार्यक्रम में मुझे ऐसे स्कूली शिक्षकों, शिक्षाविदों और विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों के साथ काम करने का मौका मिला जो ईमानदार, कुशल, आलोचनात्मक और सहयोगी थे। इस श्रृंखला में चार पुस्तकें तैयार की गयीं जिनमें रंगीन चित्रों के साथ-साथ रोचक जानकारी को बक्सों में दिया गया था। इन पुस्तकों का आज भी व्यापक उपयोग हो रहा है। क्योंकि एक दशक बीत चुका है इसलिये इनको अब सुधारने की आवश्यकता है।

मेरी भारतीय शास्त्रीय संगीत और फोटोग्राफी में गहरी रुचि है। जंगल, तर इलाकों (वेटलैंड्स), कृषि क्षेत्रों, बंजर जमीनों, दुर्लभ और आर्थिक रूप से उपयोगी पौधों, सब्जियों और फलों के बाजार, मेरी फोटोग्राफी के प्रिय विषय रहे हैं। जिन बाजारों ने मुझे सबसे मुग्ध किया है और जिनके मैंने फोटोग्राफ्स लिये हैं वो हैं बैंकाक, बेलेम (जिसे ब्राजील में मेरकाडो वेर-ओ-पीसो के नाम से जाना जाता है और यहां एमैजान का सारा माल बिकता है), लाईडिन (हौलैंड), पैरिस, इंफाल (मनीपुर), शिलांग (मेघालय), गैंगटौक (सिक्किम) और हां, मैसूर में। मैं अपने विशाल स्लाइड्स के संकलन को लेक्चरों, लेखों, पुस्तकों और शैक्षणिक फिल्मों में उपयोग में लाता हूं।

क्या आज के युग में वनस्पतिशास्त्र और जीवविज्ञान जैसे विषयों के लिये कुछ स्थान बचा है? आज यह बहुत बड़ी विडंबना है कि जब विश्वस्तर पर जैवीय-विविधता, संरक्षण की चिंतायें बढ़ रही हैं तब भारत में ऐसे विशेषज्ञों की कमी हो जो इस कार्य का मूल्यांकन कर सकें और व्यापक प्रजातियों के रोल को समझ सकें।

रियो डी जेनेरियो के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद भी हमारे यहां टैक्सोनोमी (वर्गीकरण का विज्ञान) को

नजरंदाज किया जा रहा है। बहुत सारे बैक्टीरिया, फफूंद, नेमाटोड्स, कीटों और पौधों की पहचान और अध्ययन अभी भी बाकी है। हमें इस प्रकार के प्रशिक्षित लोग चाहिये जो जैविक-विविधता को संख्यात्मक रूप दे सकें और उस आधार पर प्रजातियों के संरक्षण की स्थिति निश्चित कर सकें। इससे भी अधिक जरूरी है कि हम उन्हें अध्ययन, विश्लेषण, भंडारण और पुनः प्राप्ति के नये तरीकों से लैस कर सकें। पर्यावरण के प्रभाव के मूल्यांकन के लिये पौधों और प्राणियों के विश्वसनीय/संख्यात्मक आंकड़ें उपलब्ध होना अनिवार्य हैं।

हमारी पृथ्वी एक छोटा ग्रह है और उसके संसाधन बहुत ही सीमित हैं। करोड़ों साल के विकास के दौरान इसमें अद्भुत जीवों की विविधता पनपी है जो एक-दूसरे को अनेकों तरीकों से प्रभावित करते हैं और पृथ्वी पर जीवन को कायम रखते हैं। इंसानों की होशियारी से ही प्रजातियां चुनी गयी हैं और पालतू बनायी गयी हैं। इंसानी जरूरतों को पूरा करने के लिये सूक्ष्मजीवों, पौधों और जानवरों की पैदावार बढ़ी है।

परंतु अधिक उत्पादन, अधिक उपभोग और उच्चस्तरीय जीवनयापन के लिये प्रौद्योगिकी द्वारा भौतिक चीजों की होड़ के कारण अंधाधुंध जंगल कटे हैं और जंगली इलाके नष्ट हुये हैं। इसके साथ-साथ जंगलों में रहने वाले समूह और आदिवासी भी तबाह हुये हैं। जंगलों के कटने से जमीन की ऊपरी मिट्टी कट कर नदियों में बाढ़ लाती है और इससे प्रजातियां अधिक तेजी से लुप्त होती हैं। यह जरूरी है कि हम पर्यावरण और आर्थिक दोनों स्तरों पर सुरक्षा सुनिश्चित करें।

हम यह समझें कि पृथ्वी और उसके मूल तत्व किस प्रकार काम करते हैं। हमें पर्यावरण को बचाने के साथ-साथ आर्थिक प्रगति भी करनी चाहिये। इसके लिये हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ-साथ प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को उपयोग करना चाहिये। संरक्षण का काम करने के लिये सभी सचेतन नागरिकों को जीवविज्ञान को समझना होगा। निर्णय लेने के लिये लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं को समझना जरूरी है। साथ में जरूरतमंद समूह, सक्रिय भागीदारी में एक दूसरे का सहयोग करें, लड़ें नहीं। गांधीजी का दर्शन कि हमें अपनी जरूरतों पर अंकुश लगाकर उन्हें न्यूनतम करना चाहिये आज जितना प्रासंगिक है उनका पहले कभी नहीं था। उस पर अमल करने के लिये हमें अपने व्यवहार में बुनियादी बदल लानी होगी।

एक वनस्पतिशास्त्री की हैसियत से मैंने क्या विवेक अर्जित किया? काश कि मैं एक पेड़ होता: गहरी जड़ों से एक जगह पर स्थित, मेरी टहनियों और पत्तों की विशाल छतरी लगातार सोखती, निर्माण और पुर्ननिर्माण करती, बिना किसी डर या आलोचना की चिंता किये। मैं परिवर्तनों का अभ्यस्त होता और हमेशा लोगों को सिर्फ अपना सब कुछ देता।

रोमोलस विटेकर

रोमोलस विटेकर का जन्म न्यूयार्क शहर में हुआ। सरीसृपों से उन्हें शुरू से ही गहरा प्यार था। जब वो पहली बार भारत आये तो उनकी उम्र केवल आठ साल की थी। उनकी स्कूली पढ़ाई यहीं पर हुयी। 1960 के दशक के शुरुआत में वो कुछ वर्षों के लिये अमरीका गये। परंतु 1967 में वो वापिस आये। तब से भारत ही उनका घर है और सर्पविज्ञान उनका पेशा। तबसे वो दक्षिण भारत और अंडमन द्वीप में संरक्षण अभियान में जोरों से लगे हैं। उन्होंने तमिलनाड की इरुला जनजाति के साथ बहुत करीबी से काम किया है। 1970 में उन्होंने भारत के पहले सर्पोद्यान की स्थापना की और 1975 में, महाबलिपुरम में मगरमच्छों के संरक्षण के लिये मद्रास क्रोकोडाइल बैंक की स्थापना की। उन्होंने सरीसृपों पर कई पुस्तकें लिखी हैं और अब वो अपना अधिकांश समय वन्यजीवन पर फिल्में बनाते हैं। उनकी बच्चों की फिल्म *द बाॅय एंड द क्रोकोडाइल* को बहुत से पुरुस्कार मिले। 1998 में नेशनल ज्योगरेफिक टेलीविजन के लिये बनायी उनकी फिल्म *किंगकोबरा*, अमरीका में प्रतिष्ठित ऐमी पुरुस्कार से सम्मानित हुयी।

सांपों का दीवाना

पांच साल की उम्र में मैं भाग्यशाली था कि उत्तरी न्यूयार्क राज्य के खेतों और जंगलों में घूम सका। यहीं मेरा जन्म हुआ था। पिता से अलग होने के बाद मेरी मां ने अकेले ही मेरा लालन-पालन किया। हम लोग 300 साल पुराने एक बड़े घर में रहते थे। उस पुराने घर की देखभाल करने में बहुत समय लगता होगा शायद इसलिये मेरे मां खुश थीं

कि मैं और मेरी बहन अपना ज्यादातर समय घर के बाहर ही बिताते थे। न्यूयार्क के हूस्कि नाम के पहाड़ी इलाके में, कई महीने बर्फ जमी रहती थी। परंतु जब वसंत आती तो वहां बहुत से जीव और प्राणी आते और वे पकड़े भी जाते!

एक बार स्थानीय बड़े लड़कों के साथ खेल के अभियान में जब हमने एक पत्थर को उल्टा किया तो उसके नीचे एक छोटे सांप को पाया। मुझे तो वो सांप बड़ा आकर्षक लगा परंतु मेरे दोस्तों ने उस गार्टर सांप को पत्थरों से मारा। मैं उस बुरी तरह कुचले हुये सांप को एक डिब्बे में रखकर घर ले गया। मुझे अभी तक याद है कि मेरी छोटी बहन ने उसे देखकर घृणा से कहा, “इस बेचारे को तुम कैसे मार सकते हो?” मैं जल्द ही सांप पकड़ने लगा और उन्हें जिंदा घर वापिस लाने लगा। अपनी तेज शिकारी समझ के कारण मैंने पैदल चलना शुरू करते ही, कीड़े और मकड़ियां पकड़ना शुरू कर दिया था (मेरी मां मुझे बताती हैं)। इसलिये अब सांपों को पकड़ने से जिंदगी में थोड़ी और रंगत आ गयी। अगर मेरी मां कुछ मित्रों को चाय पर बुलातीं तो वे या तो मेरे शौक में बहुत रुचि दिखाते या फिर सांपों से भरे मेरे कमरे से बहुत दूर ही रहते।

जिंदगी के उस चरण में मुझे यह पता नहीं था कि सरीसृपों का यह शौक एक दिन मेरा पेशा बन जायेगा। मुझे डायनौसौर में बेहद गहरी रुचि थी और मुझे पता था कि जीवाश्म-विज्ञानी ‘हड्डियों के लिये खुदायी करते हैं’। मुझे लगता था कि बड़े होकर मैं वही बनूंगा।

परंतु जब मैं सात वर्ष का था तब मां मेरे सौतेले पिता राम के साथ भारत आ गयीं। यहां पर आकर मेरे लिये सांपों, छिपकलियों, कछुओं और मगरमच्छों की एक नयी दुनिया खुल गयी। बंबई के जुहू तट के सपेरे मेरे पहले शिक्षक थे। परंतु मैं जल्द ही उनके जादू और बकवास की परिधि से आगे निकल गया।

मैं क्रार्फोर्ड मार्केट में पालतू जानवर देखता। यहां सुंदर कछुये, छोटे अजगर कभी-कभी एक छोटे मगरमच्छ को भी देखा जा सकता था। बाद में मैं बांबे नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी में जाने लगा और धीरे-धीरे मैं एक प्रकृति वैज्ञानिक बनने की ओर बढ़ने लगा। मेरे स्कूल के दिन कोडाईकैनाल में बीते, जो तमिलनाड में 7000 फीट की ऊंचाई पर स्थित है। बोर्डिंग स्कूल में मेरा पालतू अजगर मेरे पलंग के नीचे ही रहता था। परंतु गिरगिट और कभी-कभी पकड़ में आये विषैले पिट-वाइपर सांपों को जीवविज्ञान की प्रयोगशाला में ही रखना पड़ता था। मेरा नसीब अच्छा था। मैं कभी कुछ समय के लिये शहर में भी रहा परंतु ज्यादातर समय मैं जंगल के पास ही रहा और कोई बहाना बनाकर स्कूल से दूर जंगलों में घूमता रहा।

यह सौभाग्य ही है कि तेरह वर्ष की उम्र तक मेरी भेंट किसी विषैले सांप से नहीं हुयी। एक बार मैंने बेवकूफी में अति विषैले फुरसा यानि रसिल्स वाइपर नाम के सांप को बटरफ्लाई नेट के जाल की मदद से से झील में से निकाला और फिर उसे अपने खाने के डिब्बे में रखा। परंतु सांप पकड़ने के इन शुरुआत सालों में मैं जिंदा रहा और मुझे इस दौरान बहुत अच्छा अनुभव मिला।

अगला बड़ा चरण तब आया जब मैं कालेज की पढ़ाई के लिये अमरीका गया। मैंने पढ़ाई में कुछ खास अच्छा नहीं किया परंतु मुझे मियामी सर्पोद्यान में नौकरी मिल गयी। उस समय यह दुनिया में सांप के विष उत्पादन का सबसे बड़ा केंद्र था। इस जगह को लोग ‘सर्प’ के नाम से बुलाते। इसका मालिक बिल हास्ट था जो हरेक के साथ सख्ती से पेश आता था परंतु वो 15 फीट लंबे किंग कोबरा सांपों को आसानी से पकड़ लेता था। दस साल बाद मैं भी दक्षिण भारत और अंदामन द्वीप में, अपने हाथों से नाग यानि किंग कोबरा पकड़ रहा था। इसी बीच वियतनाम युद्ध के लिये मुझे अमरीकी सेना में भर्ती होना पड़ा। मैंने युद्ध के ज्यादातर सालों में टेक्सस और ऐरीजोना में रैटिल स्नेक (यह सांप पूंछ से झुनझुने की आवाज करता है) पकड़ते हुये बिताये। युद्ध के साल इतने बुरे नहीं बीते! यहां मुझे बहुत गंभीर रूप से एक सांप ने काटा। एक बार टेक्सस/ऐरीजोना की सरहद पर मैं थोड़ा लापरवाह हो गया और तभी एक प्रेरी रैटलर प्रजाति के सांप ने मेरे दायें हाथ की तर्जनी उंगली पर वार किया। वो दर्द असहनीय था। जैसे किसी ने हड्डी में गर्म कील ढोक दी हो। मैं दो हफ्ते तक अस्पताल में रहा। मेरी उंगली बच गयी परंतु वो अभी भी एक तरह से अपंग है - वो मुझे हमेशा याद दिलाती है कि मुझे अगली बार सावधानी बरतनी चाहिये।

भारत आने के बाद मैंने ‘सर्पों के देश में’ एक सर्पोद्यान स्थापित करने का निर्णय लिया और अपनी रुचि के जीवों - सरीसृपों का अध्ययन करने का निश्चय किया। उनके खूबसूरत रंग, उनके चलने की अदा मुझे हमेशा आकर्षित करती है और यह कभी-कभी बहुत खतरनाक भी होती है। मैं पक्षियों और स्तनपायी प्राणियों को लेकर कभी भी इतना उत्साहित नहीं हुआ जितना कि सरीसृपों से। सच तो यह है कि ऐरीजोना और फ्लोरिडा में मैं और मेरे साथ सांपों का

शिकार करने वाले साथी चिड़ियों और स्तनपायी प्राणियों का मजाक उड़ाते थे: “बदबूदार और शोर मचाने वाले” हम कहते “ये सांपों के लिये अच्छा भोजन हैं!” और “किसी भी पैरों वाले प्राणी पर मैं यकीन नहीं कर सकता हूँ”। हम सरीसृपों के बारे में लगातार जो गलत बातें सुनते थे यह उसकी ही प्रतिक्रिया थी। सच तो यह था कि हम सभी लोग किसी न किसी रूप में प्रकृति वैज्ञानिक थे और हमारी सभी प्राणियों और पौधों में रुचि थी।

परंतु मुझे फिर भी अपना जीवनयापन तो करना ही था! पहले मैंने अखबारों और फिर पत्रिकाओं के लिये लेख लिखना शुरू किये जिनके लिये मैं अपने पुराने पेंटेक्स के-1000 कैमरे से ही फोटोग्राफ लेता था। मैं बांबे नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी की पत्रिका में सरीसृपों के बारे में रोचक जानकारियां लिखने लगा। इसी बीच मैं सर्पोद्यान शुरू करने के लिये कोई स्थान ढूँढने लगा और जल्द ही मुझे महसूस हुआ कि मद्रास ही इसके लिये सबसे उपयुक्त जगह होगी। इस लंबी कहानी को छोटा करते हुये मैं बस यही कहूंगा कि मैंने जंगल विभाग और मद्रास (जो अब चेन्नई है) सचिवालय में लोगों को काफी परेशान किया और अंत में उन्होंने शहर के मध्य - गिंडी राष्ट्रीय उद्यान के परिसर में मुझे भारत का पहला सर्पोद्यान शुरू करने की अनुमति दे दी।

मद्रास सर्पोद्यान शुरू से ही बहुत सफल रहा और मेरे बहुत से अच्छे मित्रों, भाई और बहन ने इसको संभव बनाने में सहायता दी। मद्रास के पास रहने वाले इरुला जनजाति के लोग मेरे मित्र और पथप्रदर्शक बने। इन लोगों को विषैले सांपों - कोबरा, क्रेट, रसेल वाइपर और सा-स्केल्ड वाइपर को पकड़ने का पीढ़ियों और सदियों का अनुभव था। उनसे जो कुछ भी मैंने सीखा उसे मैं किसी भी कालेज में नहीं सीख सकता था।

मैं लगातार सांपों को पकड़ने के लिये राजस्थान और पश्चिम बंगाल के दूर-दराज इलाकों की यात्रा कर रहा था जिससे कि सर्पोद्यान में हर साल आने वाले दस लाख लोग कुछ नयी प्रजातियों के सांप देख पायें। परंतु मेरी सबसे रोमांचक यात्रा रही जब मैं मई के महीने में कर्नाटक के अगुंबे नाम के इलाके में गया। वहां जंगल एकदम नम और गर्म था और किसी भी दिन बारिश पड़ने की उम्मीद थी। तभी मुझे एक सांप की काली, भुगंज पूंछ झाड़ियों में गायब होती दिखी। प्रतिक्रिया में मैं तत्काल कूदा और मैंने झट से ओझल होती पूंछ को पकड़ लिया। जब मैंने सिर ऊपर उठाया तो मैंने एक बड़े सांप को फन फैलाये अपनी ओर घूरते देखा। उसे देखकर मेरा दिल उछल कर हलक में अटक गया - वो एक नाग यानि किंग कोबरा था! मैंने झट से उसकी पूंछ छोड़ दी और पैरों के बल कूदकर किसी डंडी को तलाशने लगा। मैं उस किंग कोबरा को पकड़ने में सफल रहा और उसकी 12 फीट लंबे शरीर को मैंने आसपास उपलब्ध सबसे बड़े थैले अपने स्लीपिंग बैग में मुश्किल से घुसाया।

परंतु केवल सांपों को पकड़ना, उनका अध्ययन करना और उनके बारे में सिखाना मेरे लिये पर्याप्त नहीं था। लोगों की बढ़ती आबादी का सरीसृपों पर दबाव पड़ रहा था। भारत में विशेष रूप से मगरमच्छ काफी मुश्किल स्थिति में लगते थे। उनकी सहायता के लिये दो काम करना जरूरी थे - पहला, पूरे भारत में मगरमच्छों का सर्वेक्षण करके उन्हें कितना खतरा है इसे मालूम करना, और दूसरा, मगरमच्छों के लिये एक जीन-बैंक की स्थापना करना - एक ऐसा फार्म जहां डायनासौर युग के इन विशाल प्राणियों का संरक्षण किया जा सके।

1975 में, कई मित्रों की सहायता से मद्रास क्रोकोडाइल बैंक की शुरुआत हुयी। शुरु में यहां पर सिर्फ एक दर्जन मगरमच्छ थे परंतु अब धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ कर 5,000 हो गयी है और उनमें दस भिन्न प्रजातियां हैं।

क्रौक-बैंक सिर्फ मगरमच्छों का उत्पादन केंद्र नहीं है परंतु यह देश के कई हिस्सों, जिनमें अंदामन द्वीप शामिल हैं में कई संरक्षण प्रकल्पों का आधार है। पिछले कई वर्षों में बहुत से अच्छे छात्रों ने अपने काम की शुरुआत क्रौक-बैंक के प्रकल्पों से शुरू की है। धीरे-धीरे विज्ञान को अधिक लोकप्रिय बनाने के साथ-साथ उन्होंने वार्षिक वैज्ञानिक पत्रिका **हैमडरैयड** (जो किंग कोबरा का ही एक और नाम है) को प्रकाशित करना शुरू किया है।

लोगों को सरीसृप दिखाने और उनके बारे में बताने की मेरी आदत मुझे डाक्युमेंटरी फिल्में बनाने की ओर ले गयी। पहले मैंने एक कम बजट वाली फिल्म **‘स्नेकबाईट’** बनायी जो सांप के काटने से बचने और उसके उपचार के बारे में थी। हाल के वर्षों में मेरी फिल्मों की नेशनल ज्योग्राफिक टेलीवीजन ने सहायता की है। इससे मैं और मेरे साथी विस्तृत फिल्में बना पायें हैं जिसमें एक फिल्म दुनिया के सबसे बड़े जहरीले सांप किंग कोबरा के प्राकृतिक जीवन पर भी है।

इसमें आप देख सकते हैं कि जिन प्राणियों को ज्यादातर लोग चिपचिपा और डरावना समझते हैं उनमें अगर एक

बच्चे की गहरी रुचि हो तो वो उसका सबसे संतोषजनक पेशा बन सकता है। सरीसृपों में मेरी खुद की आत्म-केंद्रित रुचि दिन दूनी रात चौगानी के हिसाब से बढ़ी है और उसके ही परिणाम स्वरूप मद्रास सर्पोद्यान, मगरमच्छ बैंक और कुछ बढ़िया शैक्षणिक फिल्में तैयार हो सकी हैं। प्राणियों के अथाह प्रेम ने ही मेरी जिंदगी को बेहद सुंदर और जीने काबिल बनाया है।

आर सुकुमार

1980 से रमन सुकुमार दक्षिण भारत में हाथियों का जीवन और उनके व्यवहार का अध्ययन कर रहे हैं। एशियाई हाथियों के अध्ययन पर उन्हें 1988 में डाक्टरेट की उपाधि मिली। हाथियों और इंसानों के बीच के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि है। हमारी संस्कृति और सभ्यता के विकास में हाथियों ने क्या रोल रहा है और आज लोगों और हाथियों के बीच क्यों टकराव की हालत पैदा हुयी है। सुकुमार, इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस, बेंगलोर के सेंटर फार इकोलॉजिकल साइंसिज में अध्यापक हैं। वो आईयूसीएन के एशियन एलीफेंट स्पेशलिस्ट ग्रुप के चेयरमैन और एशियन एलीफेंट रिसर्च और कंजरवेशन सेंटर के अवैतनिक निदेशक हैं। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें **एलीफेंट डेज एंड नाइट्स** और **एशियन एलीफेंट: इकॉलोजी एंड मैनेजमेंट** उल्लेखनीय हैं। 50 तकनीकी शोधपत्रों के अलावा उन्होंने पुस्तकों में अध्याय भी लिखे हैं।

भीमकाय प्रेम

मैं बड़े होकर क्या करूंगा इसका मेरे बचपन के दिनों से कोई भी अतापता मिलना मुश्किल होगा। किसी शहरी बच्चे की तरह मेरी खेलों के अलावा कई अन्य रुचियां थीं। मुझे किताबों का बहुत शौक था। इसका कारण शायद यह था कि मेरे नानाजी की किताबों की एक दुकान थी। उनकी किताबों की अलमारी में धमाका बोलने में ही मुझे बचपन में सबसे अधिक मजा आता था। मेरी दादी ने मुझ में एक भावी प्राकृतिक विज्ञानी के कुछ लक्षणों को शायद पहले ही पहचान लिया था। मेरी पहली जंगल यात्रा के बहुत पहले से ही, मालूम नहीं वो क्यों मुझे वनवासी कहकर ही बुलाती थीं।

हाई स्कूल में पहुंचने के बाद ही मुझे प्राणियों की अद्भुत सुंदरता का कुछ आभास हुआ। उन दिनों अंतरिक्ष खोज का बोलबाला था और तभी मानव ने चंद्रमा पर अपना पहला कदम रखा था। अंतरिक्ष के रोमांच की पकड़ पृथ्वी की वास्तविकताओं से कहीं अधिक थी। उस समय सारी दुनिया पर्यावरण की दयनीय स्थिति - प्रदूषण और प्रकृति के विनाश से भी रूबरू हो रही थी। संरक्षण का आंदोलन थोड़ा जोर पकड़ रहा था। उस समय भी मेरी यही धारणा थी कि अगर लोग पृथ्वी के सीमित संसाधनों का विवेकपूर्ण, उपयुक्त और बराबरी से इस्तेमाल नहीं करेंगे तो स्थिति जल्दी ही एक बड़ी समस्या बन कर खड़ी हो जायेगी।

मेरी विज्ञान में गहरी रुचि थी और मैं संरक्षण के क्षेत्र में काम करना चाहता था। मुझे लगा कि आदर्श स्थिति तभी होगी जब मैं जीवविज्ञान पढ़कर पर्यावरण विज्ञान (इकोलोजी) में विशेषता हासिल करूं। इसी उद्देश्य को प्राप्ति के लिये मैंने लौयोला कालेज में और बाद में मद्रास (अब चेन्नई) के विवेकानंद कालेज में वनस्पतिशास्त्र की पढ़ाई की। सौभाग्य से मुझे ऐसे शिक्षक मिले जिन्होंने पाठ्यक्रम के बाहर की भी सृजनशील गतिविधियों को प्रोत्साहित किया।

मैं भाग्यशाली था क्योंकि मैं उस समय दक्षिण भारत के सबसे बड़े शहर मद्रास में था। यहां शहर के बीच में ही एक राष्ट्रीय उद्यान है - गिंडी राष्ट्रीय उद्यान जहां अभी भी कुछ प्राकृतिक जंगल हैं, ढेरों चीतल और कृष्णसाल (ब्लैकबक) हैं और बहुत सारे पक्षी हैं। मैं अपना ज्यादातर समय गिंडी उद्यान में आर सेल्वामुमार के साथ बिताता जो उस समय वहां प्राणी अध्ययन कर रहे थे। बाद में वो मेरे साथ कई जंगल यात्राओं पर गये। सेल्वम को प्रकृति से दिली लगाव था और वो पक्षियों और प्राणियों की दुनिया में हमेशा खोये रहते थे। वो चींटी से लेकर व्हेल तक किसी प्राणी को पहचान सकते थे और उसका विस्तृत वर्णन कर सकते थे। उनकी वजह से मेरा काम बहुत आसान हो गया और उसमें मुझे बहुत मजा भी आने लगा।

हाथियों में शायद मेरी गुप्त रुचि रही हो क्योंकि उस समय मुझे इस बात का बिल्कुल अंदाज नहीं था कि मैं कभी हाथियों का अध्ययन करूंगा। हटारी नाम की फिल्म में एक छोटे हाथी की चाल और वो मस्त धुन आज भी मुझे

सबसे प्रिय है। जब मुझे रेडियो पर पहला कार्यक्रम पेश करने का मौका मिला तो मैंने इसी धुन से प्रोग्राम की शुरुआत की।

जब मैंने पहले जंगली हाथी को देखा तो मैं उसमें कुछ खास चमत्कारिक नहीं लगा। मुझे अभी भी इस बात का शक है कि मैंने असल में कोई हाथी देखा भी था! सितम्बर 1976 में हमारी क्लास वनस्पतिशास्त्र के दौरे पर गयी थी। हम लोग दक्षिण भारत में तमिलनाडु के मधुमलाई अभयारण्य में गये जो हाथियों के झुंडों के लिये मशहूर है। मैं मधुमलाई के वारडन पी पद्मानाभन से बात कर रहा था। वो बाद में राज्य के मुख्य वाइल्डलाइफ वार्डन बने और उन्हें जंगली प्राणियों के शोध को काफी प्रोत्साहन दिया।

एक खटारा कार मेरे सामने आकर रुकी और उसमें से एक परिचित सा व्यक्ति बाहर निकला और बोला, “अरे बेटे, तुम यहां पर क्या कर रहे हो?” वो प्रकृति के प्रसिद्ध फोटोग्राफर सिद्धार्थ बुच थे। मेरी जंगल यात्राओं में वो पहले गुरुओं में एक थे और इस समय वो अपने जीजाजी के साथ मधुमलाई घूमने आये थे। वो मद्रास से 600 किलोमीटर की दूरी इस खटारा गाड़ी में तय करके आये थे। ये गाड़ी हाईवे पर मुश्किल से 40 किलोमीटर प्रति घंटा तय पाती! हाथियों के इलाके में इस तरह की गाड़ी में सवारी करना एकदम अनउपयुक्त था क्योंकि हाथी की छोटी सी ठोकर से भी इस गाड़ी की धज्जियां उड़ जातीं। और मधुमलाई का यह क्षेत्र हाथियों से भरा था। परंतु इन दोनों लोगों ने फिर भी भारी जोखिम उठाया। सिद्धार्थ मुझे देखकर काफी खुश हुये। उन्होंने पूछा कि क्या मुझे कुछ हाथी दिखायी दिये। मैंने उन्हें बताया कि हमारी टीम भी तभी वहां पहुंची थी। उन्होंने तुरंत मुझसे अपनी पुरानी खटारा कार में बैठने के लिये कहा क्योंकि वे लोग उसमें मोयर नदी के किनारे घूमने जाने वाले थे। गाड़ी को लेकर शंका के बावजूद मैं तुरंत गाड़ी में बैठ गया क्योंकि जंगली जानवरों को देखने की मेरी दिली तमन्ना थी।

हम बस कोई एक किलोमीटर आगे गये होंगे कि सिद्धार्थ ने कार रोकी और बाहर झांका और फिर एक पहाड़ी की ओर इशारा करते हुये कहा, “देखो वहां एक हाथी ढाल पर चढ़ रहा है। वो अभी-अभी नदी में से आया होगा और उसने सड़क पार की होगी।” मैंने अपनी आंखों से बहुत देखने की चेष्टा की परंतु मुझे वहां कोई भी हाथी नजर नहीं आया। “क्या तुमको उन झाड़ियों में कोई काली आकृति चलती दिखायी नहीं दे रही है?” उन्होंने पूछा। इस समय तक दोपहर हो गयी थी और जंगल प्रकाश और छांव के चकत्तों से भरा था। मुझे सौ मीटर दूर एक काला साया अवश्य दिखायी दिया परंतु फिर भी वो मुझे चलता हुआ नहीं दिखा। वो कोई पत्थर भी हो सकता था परंतु फिर भी मैंने हां में अपना सिर हिलाया जैसे मुझे सच में वो काली आकृति दिखी हो। “देखो बेटा! मैंने तुम्हें पहले जंगली हाथी के दर्शन कराये हैं!” सिद्धार्थ ने पुलकित होकर कहा। मैं अभी भी उस काले साये के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूं। परंतु सालों के अनुभव के बाद मैं पाठकों को, जो हाथियों के मनमौजी तरीकों से परिचित न हों को आगाह करना चाहूंगा कि किसी हाथी को पत्थर समझने की बजाये पत्थर को हाथी समझना ही बेहतर होगा।

1979 में मैंने इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस, बैंगलोर में पर्यावरण विज्ञान के डाक्टरल कार्यक्रम में दाखिला लिया। माधव गाडगिल ने यहां पर नवीन पर्यावरण विज्ञान का पहला शैक्षिक कार्यक्रम स्थापित किया था।

जब शोध का विषय चुनने का समय आया तो माधव ने कुछ समस्यायें सुझायीं जिनमें हाथियों और मनुष्यों के बीच संघर्ष के अध्ययन का सुझाव भी था। हाथियों का नाम सुनकर मैं एकदम चौकन्ना हुआ। मैं बड़े स्तनपायी प्राणियों का अध्ययन करना चाहता था और इसके लिये हाथियों से अच्छा और क्या हो सकता था। परंतु मैं यह कबूल करता हूं कि यह बात मेरे दिमाग में पहले कभी नहीं आयी थी।

माधव ने समझाया कि कुछ इलाकों में जंगली हाथियों के झुंड खेतों में घुस जाते हैं, खड़ी फसल को खा जाते हैं और कभी-कभी लोगों को भी मार डालते हैं। साथ-साथ लोग भी हाथियों के प्राकृतिक जंगलों पर कब्जा करते हैं और अपनी फसलों को बचाने और हाथी दांत की तस्करी के लिए हाथियों को मार देते हैं। इंसानों और हाथियों के बीच के इस परस्पर संबंध का विस्तृत अध्ययन न तो एशिया में और न ही कभी अफ्रीका में हुआ है। इस रूप में यह अपने आपमें एक अनूठा अध्ययन होगा। यह अध्ययन संरक्षण के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण होगा क्योंकि हाथियों के लंबे समय तक जीवित रहने के लिए इस समस्या का समाधान नितांत आवश्यक था।

इस प्रकार 1980 में मैंने दक्षिण भारत में हाथियों का अपना अध्ययन शुरू किया जो आज भी जारी है। मैं हाथियों का अध्ययन कर रहा हूं, उनके फोटोग्राफ्स ले रहा हूं, उनको खदेड़ रहा हूं और उनके द्वारा खदेड़ा जा रहा हूं। मैंने

हाथियों को प्यार करते, संभोग करते, बच्चे जनते, मां-बाप का रोल अदा करते, खेलते, लड़ते, मिट्टी में लुढ़कते, जीवन का आनंद लेते और मरते देखा है। हाथी बड़े मजेदार भी हो सकते हैं। हाथी काफी भयावय भी हो सकते हैं। उन्हें देखकर बहुत संतोष मिलता है परंतु साथ-साथ उनके अध्ययन की लत भी लग सकती है। दो दशकों के बाद भी जब मैं हजारों हाथियों का अध्ययन कर चुका हूँ, आज भी मैं जब किसी हाथी को देखता हूँ तो ठिठक कर खड़ा होकर उसे निहारता रहता हूँ। अगर चीता जंगल की आत्मा है - जो रहस्यमयी है और कभी-कभी ही दिखता है तो हाथी जंगल का शरीर है - भीमकाय, तेजस्वी, जिसके प्रभुत्व को हरेक कोई महसूस कर सकता है। फिर भी हाथी के जीवन में कोई जल्दबाजी नहीं होती। उसे देख कर ऐसा लगता है जैसे आप किसी फिल्म को धीमी-गति से देख रहे हों।

इस मंत्र-मुग्ध करने वाले जीव को थोड़ा भी समझने के लिए किसी को जंगल में कई वर्ष बिताने होंगे। हरेक दिन, हरेक महीने, हरेक साल इसकी प्रकृति के कुछ नए लक्षण आपको सीखने को मिलेंगे। हाथियों की जनसंख्या की गतिशीलता को सूक्ष्मता से समझने के लिए शायद कई साल भी काफी न हों। इसके लिए शायद कई दशकों तक आपको आंकड़ें और जानकारी एकत्रित करनी पड़े। हाथी लंबी उम्र तक जीते हैं और उनका सामान्य जीवनकाल 70 वर्ष का हो सकता है।

इसाक केहिमकर

बांबे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी (बीएनएचएस) से जुड़े इसाक केहिमकर करीब 20 साल से संरक्षण के काम में जुटे हैं। 1979 में उन्होंने बीएनएचएस में, सहायक लाब्रेरियन की हैसियत से में काम शुरू किया। अब वो वहां पर जनसंपर्क अधिकारी हैं और लोकप्रिय पत्रिका हार्नबिल के संयुक्त संपादक हैं। इसाक का काम कार्यशालाएं, लेक्चर, स्लाइड-शो, और शिक्षकों, छात्रों, आम लोगों और फौजी अफसरों जैसे कुछ विशेष समूहों के साथ बाहरी परिभ्रमण आयोजित करना है। कई टीवी कार्यक्रमों और फिल्मों में वो प्रकृति विशेषज्ञ रहे हैं। इसाक ने अपनी बहुमुखी रुचियां के कारण बहुत सी कुशलताएं अर्जित की हैं जिनमें सिनेमाटोग्राफी, बागबानी, तितलियों और पक्षियों के लिए विशेष बगीचों का डिजाइन और तितलियों और पतंगों को उपजाना आदि शामिल हैं। इसाक ने प्रकृति के विभिन्न पक्षों पर कई लेख लिखे हैं और तितलियों, पतंगों और कीटों के बारे में उनके कई प्रकाशन हैं। इसाक को फोटोग्राफी और घूमने का बहुत शौक है। वो देश के अलग-अलग हिस्सों में स्थित राष्ट्रीय उद्यानों और जंगली क्षेत्रों का भ्रमण कर चुके हैं।

कीड़े-मकौड़े भी वन्यजीव ही हैं!

मैं खुशनसीब हूँ कि मैं अपना बचपना एक प्राकृतिक परिवेश में गुजार पाया। मैं महाराष्ट्र में स्थित मुंबई के उपनगर गोवंडी में बड़ा हुआ। हमारे बड़े घर में खेलने के लिए एक विशाल बगीचा था। पास ही में कुछ तालाब थे जिनमें मैं मछलियां और कंकड़े पकड़ता था। वहां मनोरंजन के लिए कोई क्लब या खेल के मैदान नहीं थे। प्रकृति ही मेरा खेल का मैदान थी।

जिन चीजों को करने में मुझे खुशी मिलती थी उन्हें करने के लिए मेरे माता-पिता ने मुझे प्रोत्साहित किया। प्राणियों और प्रकृति का प्रेम मुझे अपनी दादी से विरासत में मिला। उन्हें जानवर बेहद पसंद थे इसलिए घर में हमेशा मुर्गियां, कुत्ते और अन्य कुछ जानवर होते ही थे।

कुछ अन्य पालकों के विपरीत मेरे माता-पिता घर में पालतू जानवरों का स्वागत करते थे। मेरे पिता का मानना था कि घर में अगर कोई पालतू जानवर हो तो उससे बहुत कुछ सीखने को मिलता है। उनका मानना था कि पालतू जानवरों से लोगों में एक जिम्मेदारी की भावना पनपती है। जानवरों से केवल प्यार के कारण ही आप उन्हें पालतू नहीं बनाते हैं। आपको उनकी देखभाल करनी पड़ती है और अंत में पालतू जानवर घर के ही सदस्य बन जाते हैं। पालतू जानवरों द्वारा आप जिंदगी में दुख सहना भी सीखते हैं। उनके द्वारा आप जीवन के कठिन क्षणों को झेलना सीखते हैं।

जब मैं छात्र था तो मेरी कोई भी महत्वाकांक्षा नहीं थी। विज्ञान में मेरी शुरू से ही रुचि थी। परंतु गणित में फेल हो जाने के कारण मैं कालेज में विज्ञान विषय को नहीं ले सका। इसलिए मुझे राजनैतिक शास्त्र पढ़ना पड़ा। जैसे-जैसे समस्याएं आती गयीं वैसे-वैसे मैं उनका सामना करता गया।

थाने की सर्प प्रदर्शनी मेरी जिंदगी में एक निश्चित बदलाव लायी। प्रदर्शनी के संयोजकों को कुछ स्वयंसेवी चाहिए थे। मैंने इस काम को अपने हाथ में लिया क्योंकि मुझे सांपों का संभालने का कुछ अनुभव था। प्रदर्शनी खत्म हुयी परंतु मेरा प्रदर्शनी के आयोजकों के साथ एक नया संबंध जुड़ गया। प्रदर्शनी का आयोजन बांबे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी ने किया था जिसे लोग बीएनएचएस के लोकप्रिय नाम से अधिक जानते हैं।

प्रदर्शनी के बाद 1979 में, मुझे बीएनएचएस में सहायक लाइब्रेरियन के पद के लिए आमंत्रित किया गया। मैंने इसे तुरंत स्वीकार कर लिया। बाद में मैंने पुस्तकालय विज्ञान में स्नातक की डिग्री हासिल की। बीएनएचएस के साथ वो पुराना रिश्ता आज भी बरकरार है। अब मैं पूरे समय बीएनएचएस में जनसंपर्क अधिकारी के रूप में काम करता हूं।

मेरे पेशे के चयन से मेरी मां अवश्य निराश हुयीं परंतु मेरे पिता ने कहा, “पैसा तो कभी मिल जायेगा परंतु खुशी नहीं।” उन्होंने मुझे हमेशा उन कामों को करने के लिए प्रोत्साहित किया जिनसे मुझे संतोष और खुशी मिले।

लाइब्रेरियन की हैसियत से मुझे प्रकृति के बारे में पढ़ने का अच्छा अवसर और समय मिला। साथ में मुझे छात्रों, वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और प्रकृति में रुचि रखने वाले अन्य लोगों और ग्रुपों से मिलने का भी मौका मिला।

बीएनएचएस में ही मैं पहली बार पक्षियों के विशेषज्ञ डा सलीम अली से मिला। डा सलीम अली एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मुझे मेरे काम में प्रेरित किया। डा सलीम अली एक तितली की तरह थे। जब आप किसी तितली को पकड़ते हैं तो वो आपकी उंगलियों पर एक पाउडर छोड़ जाती है। इसी प्रकार डा सलीम अली से मिलने पर आप हर बार उनसे कुछ नया सबक सीखते, विशेषकर - श्रेष्ठता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और उनके गुणों के बारे में। डा सलीम अली इस बात पर बहुत जोर देते थे कि हर काम को अपनी क्षमता के अनुसार श्रेष्ठतम किया जाए। उन्हें चालू काम करने के रवइये से सख्त नफरत थी।

शुरू में मेरी जलथली प्राणियों और सरीसृपों में अधिक रुचि थी। मैंने हार्नबिल पत्रिका - जिसका मैं अब सहसंपादक हूं के लिए गोह (मानीटर लिजर्ड) के ऊपर एक लेख तैयार किया था। लेख को पढ़ने के बाद श्री जे सी डेनियल जो उस समय बीएनएचएस के निदेशक थे और अब उसके अवैतनिक सचिव हैं ने मुझे से लेख में कुछ व्यक्तिगत टिप्पणियां और अवलोकन जोड़ने को कहा। उनके अनुसार ऐसा करने से मेरा लेख अधिक प्रभावशाली होगा। क्योंकि जानकारी तो किसी भी विश्वकोष से हासिल की जा सकती है। इस सुझाव का मुझ पर काफी असर पड़ा और उसी दिशानिर्देश के अनुसार मैं आज भी लिख रहा हूं।

कीट-पतंगों की दुनिया से मेरा परिचय तक हुआ जब मैंने एक तितली के पूरे जीवन-चक्र का अवलोकन किया। कोवे (ककून) में से एकदम जादुई तरीके से निकलती तितली ने मुझे बहुत आकर्षित किया और उसके बाद से मैं तितलियों और पतंगों का अध्ययन करने लगा। आज इतने साल बाद भी जब कभी मैं कोवे में से किसी तितली को निकलते देखता हूं तो मेरा मन खुशी से पुलकित हो जाता है।

कीटों की आकर्षक दुनिया ही मुझे उनकी ओर खींचती है। कीट हमारे इतने करीब होते हैं फिर भी हम उनके बारे में बहुत कम जानते हैं। कीटों का अध्ययन आपको धीरज और सहनशीलता सिखाता है। कीट होना क्या है? आप इस बात की कल्पना करना भी सीखते हैं। उदाहरण के लिए ऐटलस पतंगे (मौथ) को अपने कोवे में से बाहर निकलने में आठ महीने तक का समय लग सकता है!

1980 के दशक के शुरू से ही मैंने सैंक्चुरी पत्रिका के लिए लेख लिखने लगा। मैंने मंडकों, पतंगों, तितलियों, सरीसृपों और अन्य छोटे परंतु आकर्षक जीवों के बारे में लिखा। 1992 में मेरी पहली पुस्तक **कामन बटरफ्लाईस आफ इंडिया** छपी। इसे मैंने थामस गे के साथ मिलकर लिखा था।

समय के साथ-साथ मेरी रुचियां भी बदलीं। मैंने सरीसृपों से शुरू कर कीटों की दुनिया को खोजा। अब मेरी रुचि जंगली फूलों में है। प्रकृति में रुचि रखने वाले हरेक व्यक्ति को फोटोग्राफी सीखने से बहुत फायदा होगा। मेरी फोटोग्राफी की धुन 1986 में महज एक शौक से शुरू हुयी। मैंने अपनी तनख्वाह में से पैसे बचाकर एक कैमरा खरीदा। जब आप किसी व्यक्ति या चीज से बहुत प्यार करते हैं तो आप उसे अपने पास रखना चाहते हैं। प्रकृति से अगर आपको अथाह प्रेम हो तो आप उससे कुछ चुराना नहीं चाहेंगे। फोटोग्राफी द्वारा मैं अपने प्रेम को अपने पास संजो के रख सकता हूं! फोटोग्राफी से मुझे अपने अपने आपको अभिव्यक्त करने का मौका मिलता है। फोटोग्राफी द्वारा मैं

प्रकृति की विविधता और सुंदरता का गुणगान कर सकता हूँ। जब कभी भी मैं पुराने फोटोग्राफ्स को देखता हूँ तो प्रकृति में गुजारे सुनहरे पल मेरे लिए दुबारा तरोताजा हो जाते हैं।

प्रकृति प्रेमी के लिए फोटोग्राफी महज कैमरे का बटन दबाना नहीं होता है। उसे उस विषय का व्यवस्थित अध्ययन करना होता है, उसके बारे में पढ़कर और अधिक जानकारी हासिल करनी होती है। कभी-कभी इसमें बहुत उदासी और दिक्कत भी आती है। प्रकृति आपके लिए 'माडल' नहीं करती। आपको उस विशेष क्षण का शांति से इंतजार करना पड़ता है। मुझे एक खास कुमुदिनि के फूल का फोटोग्राफ लेने के लिए 6-7 साल तक इंतजार करना पड़ा। ये फूल बारिश के बाद खिलते हैं और फिर एक-दो दिनों में ही मुरझा जाते हैं। परंतु प्रकृति में चुनने के लिए भी बहुत कुछ है। एक बार मैं अंडे देते हुए गिरगिट की फोटोग्राफ खींचने में सफल हुआ। इसके लिए मुझे एक पुरुस्कार भी मिला।

मुझे बीबीसी के साथ तब काम करने का मौका मिला जब डेविड ऐटनबरो अपनी फिल्म 'ट्रायल्स आफ लाइफ' बना रहे थे। मैंने कुछ अन्य फिल्म निर्माताओं के साथ भी काम किया। वन्यजीवन और प्रकृति को फिल्म करने और फोटोग्राफी सीखने के ये बहुत ही सुनहरे अवसर थे। मुझे आशा है कि आने वाले कई वर्षों तक मैं फोटोग्राफी करता रहूंगा और प्रकृति की महिमा के बारे में लिखता रहूंगा।

मेरे दो बेटे हैं - अमित और समीर। मुझे लगता है कि समीर को प्रकृति प्रेम विरासत में मिला है क्योंकि मेरी पत्नी नंदनी ने भी, बीएनएचएस में, डा सलीम अली के साथ ही अपना काम शुरू किया था। जब बच्चे बोर्डिंग स्कूल से वापिस आते हैं तो हमारा घर एक छोटे चिड़ियाघर का रूप ले लेता है जहां हम बीमार और चोट लगे प्राणियों का इलाज करते हैं।

मुझे इस बात का दुख है कि शहरों में रहने के कारण आजकल बच्चों और युवा पीढ़ी को प्रकृति का आनंद लेने और उससे रिश्ता जोड़ने का मौका नहीं मिलता है। वो कितना सुंदर अनुभव खो देते हैं! जब कभी भी मौका मिलता है तो हमारा पूरा परिवार मिलकर कहीं भी सैर-सपाट के लिए निकल पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि मेरे बच्चे स्वच्छ हवा में सांस ले पायें और वो हरे-भरे जंगलों और किलकिलाते झरनों का आनंद ले सकें। अच्छाई और सुंदरता का अनुभव करने के बाद ही आपको खराबी और अप्राकृतिक चीजों का सही बोध होगा।

मैं अपने बेटों के साथ घुमक्कड़ी के लिए जाता हूँ जिससे पहाड़ियों पर चलते समय वो झरनों का आनंद ले सकें और साफ हवा में सांस ले सकें। बिगड़ती हालत और गंभीर हादसों के बारे में लिखकर पर्यावरण चेतना जगाने में मेरा विश्वास नहीं है। इसके विपरीत मैं चाहता हूँ कि लोग अपने आसपास के परिवेश को बारीकी से देखें, प्रशंसा करें और उससे प्रकृति के प्रति अपनी संवेदनाओं को बढ़ाएं। जब आप एक बार प्रकृति की जटिलताओं को बारीकी से 'देखने' और समझने लगेंगे तब आप खुद ही सचेतन होकर उसकी सुंदरता का बचाने और संरक्षण के लिए कदम उठाएंगे।

सेंटर फार इंवायननमेंट एड्युकेशन में अंबिका अइयादुराई और कल्याणी कांडुला के साथ बातचीत पर आधारित।

रवि चेल्लम

रवि चेल्लम शुरू में डाक्टर बनने या फिर इंडियन फारेस्ट सर्विस में दाखिल होने की सोच रहे थे। वनस्पतिशास्त्र में स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने एक अनपेक्षित कदम उठाया और वन्यजीवों के जीवविज्ञान पर शोध शुरू किया। उन्होंने 1985 में देहरादून में स्थित वाइल्डलाइफ इंस्टिट्यूट आफ इंडिया (डब्ल्यूआईआई) में पीएचडी करने के लिए दाखिला लिया और तभी से एशियाई शेरों के साथ उनका संबंध स्थापित हुआ। गुजरात में गिर के जंगलों में कई रोमांचक साल गुजारने के बाद रवि अभी भी डब्ल्यूआईआई के साथ हैं जहां वो अब पढ़ाते हैं। वो अपना समय शोध, पढ़ाने और संगठन के कामों में बिताते हैं। वर्तमान में वो जिस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे हैं उसमें सरीसृपों और छोटे स्तनपाई जीवों पर पश्चिमी घाट में रेनफारेस्ट के विघटन के प्रभाव का अध्ययन करना है। वो गिर के जंगलों में शेरों के सामाजिक व्यवहार, मध्यप्रदेश में तेंदुओं के परिवेश और असम में हूलौक गिबन्स के ऊपर जंगल कटाई के प्रभाव का अध्ययन करने की योजना बना रहे हैं। उनकी अन्य शौक हैं खेल (वो डब्ल्यूआईआई की क्रिकेट टीम के कप्तान हैं) संगीत, पुस्तकें, बागबानी और पालतू जानवर। उन्होंने बहुत सी वैज्ञानिक पत्रिकाओं के लिए लेख लिखे हैं। उनके अनेकों लेख लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं और संरक्षण संबंधी पुस्तकों में छपे हैं।

शेर का पीछा और पेशा

1988 की बात है। गिर के जंगल में काला स्याह अंधेरा था। रात के तीन बज चुके थे और कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। परंतु मैं उस समय काम में व्यस्त था। मुझे बहुत से उपकरण और लोगों को दो जीपों में लादना था। इनमें मेरे प्रोजेक्ट सुपरवाइजर डा ए जे टी जौनसिंह, मेरे साथी जमाल खान, बहुत सारा उपकरण, डब्ल्यूआईआई के पशुचिकित्सक डा पी के मलिक, कुछ सहायक, एक भैंस और एक बकरी शामिल थे। हम लोग गिर अभयारण्य के पूर्वी भाग में जंगली एशियाई शेरों को रसायनों से बेहोश करके उनके गले में रेडियो-कालर (पट्टा) डालने जा रहे थे।

रेडियो-कालर शोध का एक ऐसा उपकरण है जिसमें मजबूत कपड़े के पट्टे के ऊपर एक रेडियो ट्रांसमिटर लगा होता है। इस ट्रांसमिटर में से लगातार कुछ संकेत निकलते रहते हैं। इससे शोधकर्ता को जानवर का ठिकाना पता लगता है और वो उसका सही तरीके से पीछा कर सकता है। रेडियो-टेलीमीट्री की इस विधि द्वारा बहुत से प्राणियों का अध्ययन किया जा चुका है। इनमें व्हेल, हाथी, शेर, बाघ, सांप से लेकर हमिंगबर्ड जैसी छोटी चिड़िये भी शामिल हैं।

जंगल के पूर्वी भाग में शेरों को खोज पाना और उन्हें बंदी बनाना कोई आसान काम नहीं था क्योंकि यह जानवर इंसानों से शर्माते हैं, कभी नखरे दिखाते हैं और कभी उग्र भी हो जाते हैं। हमारी योजना जंगल में भोर से पहले पहुंचने और वहां पर शेरों की दहाड़ सुनने की थी। हमें एक नर, वयस्क शेर को पकड़ना था। नर शेर सुबह से शाम तक दहाड़ते रहते हैं। हमें सड़क पर ही कोई शेर दिखायी पड़ जाए इस बात की भी संभावना थी। जीप में कुछ घंटे चलने और इंतजार करने के बाद मुझे निराशा ही हाथ लगती नजर आयी। हमें न तो कोई शेर दिखा और न ही कोई दहाड़ सुनायी पड़ी। उसके बाद हमने एक दूसरे इलाके में खोजने की ठानी। कोई सात बजे होंगे। सूरज की किरणों ने आसमान पर उजाला बिखेरना शुरू ही किया था। तभी हमने अपनी जीप को कच्ची सड़क पर रोका और पास की पहाड़ी पर शेरों की दहाड़ को सुनने के लिए चढ़े। हमें ज्यादा देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। थोड़ी ही देर बाद हमें दो नर शेरों की दहाड़ें सुनायी दीं। शेर हमसे बहुत अधिक दूरी पर नहीं थे। हम आशा कर रहे थे कि वो हमारी ओर आयें। पहली दहाड़ों के दस मिनट के अंदर ही हमें शेरों की दूसरी दहाड़ भी सुनायी दी। दहाड़ों से ऐसा लगा जैसे शेर हमारे करीब आ रहे हों।

हमने तत्काल उन्हें पकड़ने का निर्णय लिया। भैंस को जीप से उतार कर सड़क के पास के एक पेड़ से बांध दिया गया। एक विशेष बंदूक को तैयार किया गया। इसमें रसायन से भरा एक तीर था। उसका निरीक्षण किया गया। फिर डा जौनसिंह पहाड़ी के ऊपर पेड़ों के एक झुरमुटे के पीछे छिप गये जिससे कि वो भैंस के चारे को ठीक प्रकार देख सकें। सारे जरूरी सामान को उतारने के बाद जीप वापिस चली गयी। हम सभी लोग ठीक ठिकानों पर छिप गये। शेरों की दहाड़ों से ऐसा लग रहा था जैसे वो हमारे करीब आ रहे हों। परंतु जल्द ही हमारी उत्तेजना चिंता में बदल गयी। दहाड़ों से ऐसा लगने लगा जैसे शेरों ने उस रास्ते को छोड़कर हमसे दूर जाने वाली पगडंडी पकड़ ली हो। हमने फौरन आपस में चर्चा की और मेरे सहायक मुराद ने सुझाया कि अगर हम बकरी को मिमियाने के लिए विवश करें तो शायद शेर वापिस हमारी ओर चले आयें। मुराद बकरी को पकड़ कर डा जौनसिंह के पीछे आ गया। उसने बकरी को मिमियाने के लिए विवश करने के उसके कान उमंठे। बकरी जोर से मिमियाई। सूने जंगल में उसकी आवाज बहुत तेज सुनायी दी।

कुछ ही देर में हमें पत्तों के खड़कने की आवाज सुनायी दी। इसका मतलब था कि कुछ बड़े जानवर हमारी ओर आ रहे थे। एक भीमकाय नर शेर जंगल के सायेदार झुरमुटे में से बाहर निकला और उसे तुरंत पेड़ से बंधी भैंस दिखायी दी। उसने इंसानों की गैरमौजूदगी को सुनिश्चित करने के लिए एक बार चारों ओर देखा और फिर वो भैंस को मारने के लिए कूदा। शेर ने अपने जबड़ों को भैंस की गर्दन में धंसा दिया। शेर अब पास था और साफ दिखायी पड़ रहा था। अब डा जौनसिंह आसानी से उसे निशाना बना सकते थे। तीर सीधा शेर के नितंब में जाकर लगा। बंदूक की आवाज से शेर चौंका और झट से अपने शिकार को छोड़कर जंगल में कूदा।

हम दस मिनट रुके जिससे कि रसायन को अपना असर करने का समय मिल सके। फिर बड़ी सावधानी से हमारी टीम तीर लगे शेर को तलाशने निकली। शेर बहुत अधिक दूर नहीं गया था। वो भैंस के शिकार से केवल सौ मीटर दूर

जमीन पर पड़ा था। शेर चल-फिर सकता है या नहीं यह आंकने के लिये मैंने उसकी ओर कुछ सूखी लकड़ियों के टुकड़े फेंके। शेर ने बहुत हल्के से अपना सिर उठाया। दवाई ने अपना असर किया था इससे यह साफ जाहिर था। परंतु जानवर के साथ सुरक्षित काम कर पाने के लिये उसे दवाई की एक और खुराक देना जरूरी थी। मैं अपने दो सहायकों के साथ धीरे से शेर के पास गया और जल्द ही हम बेहोश शेर के सिर और नितंब पर बैठ गए जिससे कि वो बिल्कुल हिल-डुल नहीं सके। दवा की दूसरी खुराक उसे अब आसानी से इंजेक्शन द्वारा दी जा सकी।

जब शेर पूरी तरह निश्चल हो गया तो हमने रेडियो-कालर को उसके गले में बांधा। उसके बाद हमने शेर के सभी जरूरी मापों को नापा, उसकी शरीर की बाहरी चोटों पर दवाई लगायी, उसका वजन किया और फिर उसे छांव में दुबारा स्वस्थ होने के लिये छोड़ दिया। मैं सुरक्षित दूरी पर बैठकर उसके ठीक होने की प्रक्रिया का अध्ययन करता रहा।

1988 में, वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट आफ इंडिया, देहरादून में शोध करते समय मेरा यह एक सामान्य अनुभव था। उस समय मैं एशियाई शेरों के जीवन और उनके परिवेश के संबंध में डाक्टरेट की डिग्री के लिए शोध कर रहा था। साथ में मैं वो जानकारी और आंकड़ें भी इकट्ठे कर रहा था जिससे गिर के शेरों का बेहतर प्रबंधन हो सके और लंबी अवधि में उनका संरक्षण सुनिश्चित हो सके।

मैंने जंगलों में वन्यजीवन के संरक्षण के लिए शोधकार्य काफी देरी से करना शुरू किया। दरअसल मैं एक शहर में बड़ा हुआ था, मुझे क्रिकेट का शौक था और बड़े होकर मैं एक डाक्टर बनना चाहता था। मैं पहली बार किसी वन अभयारण्य में, एक स्वयंसेवी की हैसियत से प्रकृति शिक्षण शिविर में भाग लेने के लिए गया। जनवरी 1983 में, यह शिविर पाइंट कैलीमीर वाइल्डलाइफ सैंक्चुरी में तमिलनाडु राज्य डब्लूडब्लूएफ के सदस्यों के लिये आयोजित किया गया था। मैं इसमें शिविर के संचालक, प्रेस्टन अहिमाज की सहायता कर रहा था।

वैसे जीवविज्ञान और वन्यजीवन से मेरा दिली लगाव बचपन से ही शुरू हो गया था। यह शौक मेरी तमाम रुचियों और कामों में साफ झलकता था: बागवानी, पालतू जानवर और प्रकृति और वन्यजीवों के बारे में पढ़ाई आदि में। मेरे पालतू जानवरों में कुत्ते, बिल्लियां, मछलियां और पक्षी थे। इन्होंने मेरे जीवन को समृद्ध किया और मुझे जानवरों के व्यवहार की अच्छी समझ प्रदान की।

मैंने वन्यजीवन संरक्षण का पेशा ही क्यों चुना इसके के पीछे कई कारण थे। जीवविज्ञान और जानवरों से मुझे खास लगाव था। मुझे लगातार भारत के अद्भुत वन्यजीवों को देखने का मौका भी मिला। मुझे जंगलों से बहुत प्यार था। धीरे-धीरे मुझे यह भी समझ में आने लगा कि भारत के वन्यजीव और उनका परिवेश गंभीर खतरे के दौर से गुजर रहे हैं।

मेरे लिये यह निर्णय लेना बहुत आसान नहीं था। शुरू में मैंने इंडियन फारेस्ट सर्विस में दाखिल होने की सोची। परंतु अंत में मैंने उच्च शिक्षा की राह ली, जिसमें एमए करने के बाद डाक्ट्रेट की डिग्री हासिल करनी थी - और इनके लिये मुझे बहुत शोधकार्य भी करना पड़ा। मुझे इसमें अधिक स्वतंत्र काम करने की संभावनायें दिखाई पड़ीं। इसके द्वारा मैं जंगलों में शोधकार्य के साथ-साथ, संरक्षण संबंधी मुद्दों पर हो रही बहसों में भाग भी ले सकता था। दूसरी ओर जंगल अधिकारियों को कई जिम्मेदारियां संभालनी पड़ती हैं और इसमें वन्यजीवन से संबंधित काम न मिलने की भी काफी संभावना थी।

1980 के शुरुआत में, वन्यजीवन पर शोध करने का विषय, छात्रों में कोई खास लोकप्रिय नहीं था। मैं खुशानसीब था कि मुझे एक ऐसे कालेज का पता चल पाया जहां से मैं वन्यप्राणियों के जीवविज्ञान पर अपना एमए कर सकता था। साथ ही इस काम में मुझे लगातार अपने माता-पिता का प्रोत्साहन भी मिलता रहा।

मेरे माता-पिता चाहते थे कि मैं स्नातन की डिग्री के बाद भी अपनी पढ़ाई जारी रखूं। उन्होंने मुझे खुद अपना पेशा चुनने की भी पूरी आजादी दी। उनका यह सहयोग बहुत महत्वपूर्ण था। 1981 में मैंने वनस्पतिशास्त्र में स्नातन की डिग्री हासिल की। परंतु इस विषय में आगे पढ़ाई करने में मेरी बिल्कुल भी रुचि नहीं थी।

डिग्री मिलने के उपरांत मुझे अच्छी तनखाह वाली एक सेल्समैन की नौकरी मिल गयी। उससे मुझे जिंदगी काफी हसीन लगने लगी। मैं अपने माता-पिता के साथ रह रहा था, अच्छी कमाई कर रहा था, नौकरी में भी मजा आ रहा था और मैं खूब क्रिकेट खेल रहा था। परंतु दो साल की इस छोटी अवधि में मुझे वन्यजीवन को करीबी से देखने का

मौका मिला और इसने मेरी जिंदगी और पेशे को सदा के लिये बदल दिया। कुछ मित्रों को मेरे इस निर्णय पर आश्चर्य और उत्सुकता भी हुयी। आज भी उनमें से कईयों को मेरे काम के बारे में बहुत कम ही पता है। इसे समझना आसान है क्योंकि उनमें से बहुत से लोग बड़े महानगरों में रहते हैं और उन्हें वन्यजीवन को पास से देखने का कभी भी मौका नहीं मिला है।

इन सालों में मैंने अपने मित्रों और परिवार के सदस्यों को, जंगल के अपने अनुभवों को सुनाने का आनंद लिया है। इन्हें सुनने के बाद मुझे कुछ अधिक सम्मान मिलने लगा है और मेरे काम की प्रशंसा होने लगी है। ज्यादातर लोगों को यह कहानियों बेहद रोचक लगी हैं और उनमें से कुछ लोग मेरे आनंददायी स्वस्थ जंगली जीवन और अद्भुत अनुभवों से ईर्ष्या भी करने लगे हैं।

शेरों पर डाक्ट्रेट के लिए शोध के बाद मैं अब कई सरकारी विभागों और अन्य संस्थाओं के साथ शेरों के विस्थापन का कार्य कर रहा हूं। इस प्रकार शायद हम पहली बार एशिया में, किसी दूसरे स्थान पर जंगली शेरों को आबाद करने में सफल होंगे। ऐतिहासिक रूप से शेर हमेशा ही भारत के उत्तरी और मध्य इलाकों में पाये गये हैं। परंतु मनुष्यों द्वारा बड़े पैमाने पर विनाश के कारण यह शेर अब केवल गुजरात के गिर जंगल में ही सिमट कर रह गये हैं। इस स्थिति में खतरे की तमाम संभावनाएं हैं क्योंकि एक लुप्त होती प्रजाति के सभी सदस्य एक जंगल के छोटे से हिस्से में ही सीमित हैं। कोई भी बीमारी या अन्य कोई खतरा शेरों की इस पूरी आबादी का एक साथ सफाया कर सकता है और इससे यह दुर्लभ प्रजाति सदा के लिए लुप्त हो सकती है।

अपनी डाक्ट्रेट के शोधकार्य के आधार पर मैंने उन संभावित इलाकों का सर्वेक्षण किया जहां पर इन शेरों को उचित तरीके से दुबारा बसाया जा सके। जनवरी 1995 में, मैंने अपनी रपट भारत सरकार को सौंपी। तब से मध्यप्रदेश के कुनो-पालपुर जंगलों में, शेरों के व्यवस्थित रूप से जीवनयापन करने की तैयारियां की जा रही हैं।

अगर इस प्रकार शेरों का प्रतिस्थापन किया जाता है और सफल होता है तो यह शेरों की लंबी अवधि के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण कदम होगा और इससे मुझे व्यक्तिगत सफलता का अपार संतोष मिलेगा। इन बड़े मांसाहारी जानवरों को किसी दूसरे स्थान पर ले जाना और सफलतापूर्वक उन्हें नये परिवेश में आबाद करना कोई आसान काम नहीं है। जंगलों में रह रहे लोग और आसपास बसे गांवों में लोग इन शेरों के आ जाने से अपने जीवन और अपने जानवरों के जीवन की सुरक्षा के बारे में चिंतित होंगे।

साथ इस बात का भी पूरा ख्याल रखा जाना चाहिए कि जानवरों को पकड़ने में और दूर स्थान तक उन्हें ले जाने में उन्हें कहीं चोट और नुकसान न पहुंचे। समस्या के कई राजनैतिक पक्ष भी हैं जिनपर भी विचार करना होगा। वन्यजीवन संरक्षण के काम में अक्सर इस प्रकार की चुनौतियां आती हैं।

शेरों के संरक्षण के काम के अलावा मैंने अपने शोधकार्य में पश्चिमी घाट के जंगलों में जलथली, सरीसृपों और छोटे स्तनपाई प्राणियों के संरक्षण, मध्य भारत के जंगलों में तेंदुओं का परिवेश अध्ययन और कुछ अन्य रोचक प्रजातियों और परिवेशों के संरक्षण के काम को भी जोड़ा है।

वन्यजीवन और संरक्षण के शोधकार्य में उच्चस्तरीय प्रेरणा और फील्ड में जाकर काम करने की ललक बेहद जरूरी है। साथ में जिज्ञासु दिमाग, सच्चाई के ऊंचे मानक और शोध के परिणामों को किसी प्रजाति या इलाके के संरक्षण की सहायता के लिये प्रयोग कर पाना भी आवश्यक है। वन्यजीवन में शोधकार्य, संरक्षण और प्रबंधन के काम में बहुत से प्रशिक्षित और प्रेरित लोगों को आगे आने की जरूरत है।

1980 में, मेरे छात्र दिनों में, लोग वन्यजीवन संबंधित पेशे चुनने में कम रुचि रखते थे। परंतु अब बहुत सारे युवा इस पेशे को अपनाने में रुचि जाहिर कर रहे हैं। भारत में वन्यजीवन का संरक्षण प्रभावशाली हो इसके लिये बहुत से युवा लोगों को इसके शोधकार्य में जुटना चाहिये। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हम अपने सहयोग तथा कार्य द्वारा स्थितियों को बदलने का असर अपने ही जीवनकाल में देख सकते हैं। संकट में पड़ी और लुप्त होती प्रजातियों और उनके परिवेशों में काम करने से इसलिये अपार संतोष मिलता है क्योंकि आप अपने कार्य से स्थिति को बेहतर बना सकते हैं। वन्यजीवन संरक्षण करने के संतोष के साथ-साथ मुझे अपने पेशे में बहुत प्रेरित और कार्यकुशल युवाओं के साथ काम करने का अवसर भी मिलता है।

संक्षिप्त में मैं बस इतना ही कहूंगा कि फील्ड शोधकार्य और वन्यजीवन संरक्षण का पेशा संतोषप्रद और चुनौतियों से

भरा है। बीहड़ जंगलों, दूर-दराज के सुंदर स्थलों में सक्रिय होकर घूमने-फिरने और अध्ययन का भी इस पेशे में बहुत मौका है।

मैं जंगली जीवों के साथ काम कर पाने के लिए अपने आपको बेहद भाग्यशाली मानता हूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि आने वाले निकट भविष्य में युवा पीढ़ी के बहुत से लोग इस रोचक पेशे को अपनायेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि हमारी मूल्यवान प्राकृतिक संपदा सदा के लिए संरक्षित रहे।

शेखर दत्तात्री

शेखर दत्तात्री को तेरह साल की आयु में ही प्रकृति से गहरा अनुराग हो गया था। 1984 में, कालेज पास करने के तुरंत बाद उन्हें अमरीका से आये एक दंपति के साथ *स्नेकबाइट्स* नामक फिल्म पर काम करने का मौका मिला। फिल्म बनाने के काम से यह उनका पहला परिचय था। वो वन्यजीवन के एक सिद्धहस्त फोटोग्राफर पहले से ही थे इसलिए इस फिल्म के लिए कैमरावर्क करना उनके लिए कोई खास मुश्किल काम नहीं था। कुछ अन्य छोटे प्रोजेक्ट करने के बाद शेखर ने फिल्म *साइलेंट वैली- एन इंडियन रेनफॉरेस्ट* का निर्देशन किया। एक घंटे की यह फिल्म दक्षिण भारत में स्थित एक रेनफॉरेस्ट के बारे में है। इस फिल्म को बनाने के बाद उन्हें इनलैक्स वजीफा मिला जिससे वो आठ महीने तक इंग्लैंड में आक्सफोर्ड साइंटिफिक फिल्मस के साथ काम सके। वहां उन्होंने फिल्मों के विषय में और सेट बनाने संबंधी नयी कुशलतायें अर्जित करीं। इस अनुभव के बाद वो दिसम्बर 1992 में भारत वापिस लौटे और तब से वो लगातार वन्यजीवन संबंधी डॉक्युमेंटरीज बनाने में व्यस्त हैं। उन्होंने वन्यजीवों की कई उत्कृष्ट फिल्मों में कैमरामैन का काम किया है। इनमें नेशनल ज्योग्राफिक एक्सप्लोरर के लिए *रैट वास* और *सीसन आफ द कोबरा*, और बीबीसी श्रृंखला के लिए *लैंड आफ द टाइगर* फिल्में उल्लेखनीय हैं। *नागरहोल - टेल्स फ्रॉम एन इंडियन जंगल* फिल्म के शेखर स्वयं लेखक, कैमरामैन और प्रोड्यूसर हैं। प्रकृति पर बनी 52 मिनट की इस फिल्म ने, कई अंतर्राष्ट्रीय पुरुस्कार जीते हैं।

वन्यजीवन की शूटिंग

मैं वन्यजीवन पर फिल्में बनाने के पेशे में कैसे आया? इसकी एक लंबी कहानी है। एक दिन सोकर उठने के बाद मैंने वन्यजीवन पर फिल्में बनाने का निश्चय किया हो, ऐसा बिल्कुल नहीं हुआ। मेरा इसमें धीरे-धीरे, क्रमिक विकास हुआ।

मैं इसे विस्तार से समझाता हूँ। छुटपन से ही मुझे प्रकृति में गहरी रुचि थी। न तो मेरे पिता कोई फॉरेस्ट अफसर थे और न ही मेरे परिवार में कोई बड़ा शिकारी या प्रकृति प्रेमी था। इसलिये जब कभी भी लोग मेरे प्रकृति प्रेम के बारे में पूछते हैं तो मैं मजाक में उनसे कहता हूँ कि यह शायद मेरे दिमाग में रासानियक असंतुलन के कारण उपजा होगा!

मैं चेन्नई में एक शहरी माहौल में बड़ा हुआ। परंतु महानगर के मध्य में रहने के बावजूद हमारे आसपास काफी प्राकृतिक संपदा फैली हुई थी। हमारे छोटे से बगीचे में ताड़ के पेड़ पर चढ़ने वाली गिलहरियां, कई प्रजातियों के कीट और पक्षी थे। मुझे अपने भाई के साथ बगीचे में *तिकोमास्टांस* पेड़ के नीचे चींटियों की उड़ान अभी भी याद है। वहां बड़ी काली चींटियों की एक कालोनी थी। कभी-कभी बगीचे के दूसरे छोर पर स्थित काली चींटियों का झुंड इस कालोनी पर आकर धावा बोलता और तब घमासान युद्ध होता जिसमें बहुत सी चींटियां शहीद होतीं और बहुत सी जखमी होतीं। कभी-कभी दो बड़ी चींटियों अपने पिछले पैरों पर खड़ी होकर आपस में तब तक लड़तीं जब तक उनमें से एक, काटे जाने के कारण हार नहीं जाती। बाद में किताबों में पढ़ने से मुझे पता चला कि कुछ प्रजाति की चींटियां कभी-कभी अन्य चींटियों को गुलाम बनाने के लिये उनपर हमला करती हैं।

तिकोमा के पेड़ पर हर सुबह रेलमपेल मची रहती थी। पेड़ के चमकीले पीले और भोंपू के आकार के फूल शक्करखोरा (सनबर्ड) पक्षियों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। यह चिड़िये इतनी छोटी होती थीं कि पराग की तलाश में भोंपूनुमा फूल में घुसने पर वो लगभग पूरी तरह से फूल के अंदर छिप जाती थीं। बड़े और काले भंवरे भी खाने के लिये फूलों के इर्द-गिर्द मंडराते रहते थे। बगीचे के दूसरे छोर पर एक बड़ा नीम का पेड़ था जिस पर हमेशा

तोतों का साम्राज्य रहता था। नीम के कच्चे फल उनके आकर्षण का केंद्र होते। उसके फल में उनकी कोई रुचि नहीं होती थी इसलिये वो उसे बड़ी सफाई से काटकर बीज के अंदर का भाग खा जाते थे। पेड़ ने नीचे हर जगह गुठली विहीन फल छिटके पड़े रहते थे।

इस पेड़ पर कई गिलहरियां भी थीं। मुझे में शिकारी की भावना शुरू से ही थी और बचपन में मेरा सबसे प्रिय शौक गिलहरियां पकड़ना था। स्कूल से लौटने के बाद अक्सर मैं शाम के समय गिलहरियों को पकड़ने का सरल सा पिंजड़ा फिट कर देता था। पिंजड़ा दरअसल दो वर्ग फीट का लकड़ी और स्टील की जाली का डिब्बा था। मैं इस डिब्बे को आठ इंच लंबी डंडी के सहारे एक कोण पर टिका देता था। मैं करीब बीस फीट दूरी पर छिपकर बैठ जाता और डंडी को एक पतली डोर से बांध कर उसका एक सिरा अपने पास रखता। फिर मैं नीम के पेड़ के नीचे से पिंजड़े तक भोजन बिखराता और सबसे उम्दा खाने की चीजों को डिब्बे के बीच वाले क्षेत्र में रखता।

उसके बाद मैं शांति से किसी गिलहरी के वहां आने का इंतजार करता रहता। इस लंबी कहानी को छोटा करने के लिये शायद मैं यही कहूंगा कि जब कभी कोई गिलहरी डिब्बे के नीचे खाने आती तो मैं झट से डोर खींचता और गिलहरी डिब्बे के अंदर कैद हो जाती। इतना जरूर था कि कुछ समय बाद मैं गिलहरी को बिना कोई हानि पहुंचाये दुबारा छोड़ देता था। कैद होने पर गिलहरियों को एक बार झटका तो अवश्य लगता था परंतु ये मूक प्राणी उसके बाद भी काफी नियमित तौर पर मेरे पिंजड़े में आकर फंसते। इससे मुझे जैसे छोटे लड़के को घंटों तक 'शिकार' का वही आनंद मिलता जो किसी बड़े शिकारी को जंगल में मिलता होगा।

मुझे पढ़ने का बहुत शौक था और जो कुछ भी मेरे हाथ लगता मैं उसे पढ़ डालता। एक दिन मेरी बहन ने मुझे जेरेल्ड डरल की लिखी एक पुस्तक दी। इस आदमी ने जर्सी वाइल्डलाइफ प्रेजरवेशन ट्रस्ट की स्थापना की थी। इस किताब ने मेरा मन मोह लिया और उसके बाद मुझे वन्यजीवन के बारे में अधिक से अधिक पढ़ने की लत लग गयी। मैंने प्राणियों के व्यवहार पर कई विद्वानों की लिखी पुस्तकों के साथ-साथ जिम कार्बेट और केनेथ एंडरसन द्वारा लिखी जंगल की रोमांचक कहानियां भी पढ़ीं। इन दो लेखकों के साथ मेरे प्रिय लेखक जेरेल्ड डरल के लेखों ने मुझे में शहर छोड़ कर कहीं दूर-दराज के इलाके में सैर-सपाटे और रोमांच की ललक पैदा की। उनके रोमांचों को मैं अपनी कल्पना में जीता रहा। धीरे-धीरे वन्यजीवन मेरे लिये एक सनक बन गया!

1976 में, जब मैं तेरह साल का था तब मैं चेन्नई के सर्पोद्यान में दुबारा गया। क्योंकि प्रत्येक जीवित प्राणी में अब मेरी गहरी रुचि थी इसीलिये मैं तुरंत वहां के सांपों की ओर आकर्षित हुआ। मैं उन्हें टकटकी लगाये निहारता रहता और अपना पूरा दिन वहीं बिताता। एक दिन जब मैं एक सांप के गड्ढे में झांक रहा था तो प्रयोगशाला की नीली जैकट पहने हुये एक लड़की मेरे पास आयी। वो शायद मुझे काफी समय से देख रही थी। उसका नाम विजी था। वो एक कालेज की छात्रा थी और एक स्वयंसेवी कार्यकर्ता के रूप में सर्पोद्यान में काम करती थी। मुझे कुछ देर बात करने के बाद उसने सुझाव दिया, "तुम यहां सर्पोद्यान में स्वयंसेवी कार्यकर्ता के रूप में काम क्यों नहीं करते? यहां बहुत सारा काम करने को है और ऐसा करने से तुम सांपों के बारे में और बहुत कुछ सीखोगे।"

मुझे उसका सुझाव बेहद पसंद आया। मैंने हिम्मत बटोरी और दौड़ता हुआ सर्पोद्यान के निदेशक रौम विटेकर के पास गया और निडर होकर उनसे कहा, "मिस्टर विटेकर, मेरी सांपों में गहरी दिलचस्पी है और मुझे सांपों को संभालना आता है। मैं विजी की तरह ही यहां पर स्वयंसेवी बनना चाहता हूं। क्या आप मुझे इसकी इजाजत देंगे?" रौम विटेकर ने मुझे गौर से देखा और जो कुछ उन्होंने कहा उसने मेरे जीवन को सदा के लिये बदल डाला। उन्होंने कहा, "अवश्य, तुम यहां स्वयंसेवी बन सकते हो, पर ध्यान रखना, जो खतरनाक सांप हैं उनसे हमेशा दूर रहना।"

सब कुछ वाकई में इतना सरल था! रौम विटेकर हमेशा युवा लोगों को प्रोत्साहित करते थे। उस दिन से सर्पोद्यान मेरा दूसरा घर बन गया। मैं सांपों की देखरेख में मदद करने लगा। मैं सांपों के गड्ढों की सफाई करता, अवलोकन करता, लोगों को सांपों के बारे में बताता और कुछ लोगों को सांपों पर पत्थर फेंकने से रोकता। मैंने सर्पोद्यान के पुस्तकालय की सभी पुस्तकों को चाट डाला। धीरे-धीरे करके दिन, हफ्तों में बदल गये, महीने सालों में बदल गये और मैं सर्पोद्यान और रौम के लिये अधिक उपयोगी बनता चला गया। उन दिनों सर्पोद्यान, वन्यजीवन पर शोध का एक मुख्य केंद्र था और दुनिया भर से विभिन्न विषयों के शोधकर्ता वहां पर आते-जाते थे। इन लोगों के कारण वन्यजीवन के बारे में मेरी जानकारी भी काफी बढ़ी।

इस बीच में मैं सांप पकड़ने वाली इरूला जनजाति के साथ काफी समय बिता रहा था और उनके ठोस अनुभवों और उनके प्राकृतिक ज्ञान से बहुत नयी-नयी बातें सीख रहा था। मैं सांपों को, खासकर विषैले सांपों को पकड़ने और संभालने में भी कुशल हो रहा था। इरूला लोगों के साथ चेन्नई के निकटवर्ती क्षेत्रों में, मेरे छोटे भ्रमण धीरे-धीरे लंबे होते चले गये। फिर मैं दक्षिण भारत के असली जंगलों में जाकर अकेले ही सर्पोद्यान के लिये सरीसृप और अन्य जलथली प्राणियों को पकड़ने लगा। इन इलाकों में पाये जाने वाले सरीसृपों की मैं विस्तृत सूची भी तैयार करने में जुट गया।

जेब में दो-चार सौ रुपये और पीठ पर अपने बस्ते को लेकर मैं अक्सर स्कूल की छुट्टियों में 10 दिनों से लेकर दो हफ्तों के लिये कहीं निकल जाया करता था। मैं किसी दूर-दराज के जंगल में कभी ट्रेन और कभी बस से सफर करता था। वहां मैं किसी स्थानीय गाइड या शिकारी की मदद लेता और फिर दिल भरकर जंगल में घूमता। सरीसृपों का सर्वेक्षण तो बस जंगलों में घूमने का एक अच्छा बहाना था। यहां मैं जंगली हाथियों, गौड़, जंगली कुत्तों, ग्रेट पाइंड हार्नबिल और शेर की पूंछ वाले बंदरों को निहार सकता था।

रात के समय मैं और मेरा गाइड सिर पर टार्च लगाकर उसकी रोशनी में रात्रि के प्राणियों की तलाश में घूमते। अक्सर झाड़ियों में से बड़े जानवरों के भागने की रहस्यमय आवाजें आतीं। उन्हें रात के घुप्प अंधेरे में देख पाना संभव नहीं होता। परंतु इसी कारण हमारी कल्पनाशक्ति उड़ान भरती और हमारा दिल उत्तेजना से तेजी से धड़कने लगता। जो अभी दौड़ कर गया है क्या वो भालू था या गौड़ था? टार्च की रोशनी में चमकने वाली वो दो लाल आंखे कहीं बाघ की तो नहीं थीं? रात के अंधेरे में आ रही वो गुर्राहट क्या जंगली सुअर की या तेंदुए की? मुझे अब जंगल में जाने की बुरी तरह से लत लग चुकी थी।

मेरे एक उमरदराज मित्र श्री आर ए कृष्णास्वामी - एक अच्छे फोटोग्राफर और प्रकृति प्रेमी थे। मुझे जब जरूरत पड़ती तब वो मुझे अपना कैमरा और टेलीफोटो लेंस उधार दे देते। इस प्रकार मैं फोटोग्राफी के साथ भी प्रयोग करने लगा। क्योंकि सर्पोद्यान में एक छोटा सा फोटोग्राफी का कमरा था इसलिये मैंने सफेद और काले फोटोग्राफ्स को प्रिंट करना वहीं पर सीख लिया था। फोटोग्राफी जल्द ही मेरा सबसे बड़ा शौक बन गयी। 1984 में मैंने जीवविज्ञान में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। सर्पोद्यान के कारण ही मैंने सांपों पर काफी शोध किया और उनपर कई वैज्ञानिक निबंध लिखे। मैं जीवविज्ञान के पेशे को चुनने और सरीसृपों और जलथली प्राणियों में विशेष ज्ञान प्राप्त करने की सोच रहा था। मैं पहले एमएससी और उसके बाद में पीएचडी करने की सोच रहा था।

जीवन के इसी मोड़ पर डाक्यूमेंट्री फिल्में बनाने वाले जौन और लुई रिबर दंपति चेन्नई आये। उनका विचार भारत में रौम के साथ मिलकर सांप काटने पर एक फिल्म बनाने का था। फिल्म के लिये उन्होंने कुछ पैसे एकत्र किये थे और अब वो उस पर काम करने जा रहे थे। उस समय रौम एफएओ-यूएनडीपी के किसी काम से, लंबी अवधि के लिये पापुआ न्यू गिनी गये हुये थे इसलिये रिबर दंपति के गाइड का काम मुझे सौंपा गया। उन्हें सांपों के बारे में कुछ भी पता नहीं था और मुझे फिल्म निर्माण संबंधी कुछ भी ज्ञान नहीं था। परंतु क्योंकि मैंने स्थिर कैमरे पर काम किया था इसलिये मूवी कैमरा मेरे लिये एकदम अपरिचित भी नहीं था।

मैं यह जानने को बहुत उत्सुक था कि जौन - जो फिल्म का निदेशक और कैमरामैन था अपने शाट्स को किस प्रकार फ्रेम करता है और उन्हें सही क्रम में किस प्रकार सजाता है। अक्सर मैं उसकी अनुमति लेकर उसके कैमरे में झांकता। जब मैं फिल्म को दुबारा देखता तो उन शाट्स का तर्क मुझे समझ में आता। इस प्रकार मैं धीरे-धीरे फिल्म निर्माण के बुनियादी गुरों को सीखने लगा।

जौन और लुई स्वतंत्र और स्वावलंबी फिल्म निर्माता थे और फिल्म निर्माण के हरेक पक्ष से अच्छी तरह परिचित थे। वो स्क्रिप्ट लिखने, कैमरावर्क और संपादन के कार्य में भी निपुण थे। इसलिये बिना सचेतन प्रयास किये मैंने अनजाने में ही उनकी प्रणाली को आत्मसात किया। जब तक वो भारत छोड़ कर अफ्रीका के लिये रवाना हुये तब तक मैं फिल्म बनाने की बुनियादी कुशलतायें हासिल कर चुका था। अब मुझे केवल काम की जरूरत थी।

इस समय तक हमने चेन्नई में एक छोटी सी फिल्म कंपनी चालू कर दी थी। इसमें कुल मिलाकर चार लोग थे, रौम, उनकी पत्नी जाई, हमारी एक मित्र रेवती मुखर्जी और मैं। हम लोगों ने पते के लिये एक पोस्ट बाक्स नंबर हासिल किया और कुछ लेटरहेड छापे। मेरे माता-पिता का घर - जहां मैं रहता था, हमारा 'आफिस' बना और हममें से

हरेक ने 750 रुपये माह तनखाह लेने का निर्णय लिया। रिबर्स के लिये हमने जो 'स्नेकबाइट' फिल्म बनायी थी उसे काफी प्रशंसा मिली और उसके आधार पर हमें कुछ छोटी डाक्युमेंटरी फिल्में बनाने का काम मिला। इसमें एक फिल्म चेन्नई की सांप पकड़ने वाली, इरूला जनजाति की सहकारी समिति के ऊपर थी। दूसरी फिल्म शैक्षणिक थी और छोटे पौधों की नर्सरी बनाने के बारे में थी। तीसरी फिल्म चेन्नई के मगरमच्छ फार्म (क्रोकोडाइल बैंक) के बारे में थी।

क्योंकि ये फिल्में बहुत कम बजट की थीं इसलिये हमें इनमें काफी मेहनत और नवाचार करने पड़े। हमने एक पुराना 16 मिलीमीटर का, चाभी भरने वाला, मूवी कैमरा खरीदा और मुझे उसका कैमरामैन नियुक्त किया गया। इसमें मुझे कोई खास परेशानी नहीं हुयी क्योंकि मैंने ही रिबर्स के साथ सबसे अधिक समय बिताया था और उनसे फिल्म निर्माण संबंधी बहुत कुछ सीखा था। मैंने संपादन के साथ-साथ पूरी फिल्म के समन्वय का काम भी संभाला। बाकी सभी लोगों ने भी इसमें अपना बहुमूल्य योगदान दिया। कुल मिलाकर हमारी टीम काफी अच्छी थी।

रौम और मुझे फिल्म बनाने के कुछ अन्य काम भी मिले। उस समय सैंक्चुरी पत्रिका के संपादक बिट्टू सहगल, दूरदर्शन के लिये, प्रोजेक्ट टाइगर पर फिल्मों की एक श्रृंखला बना रहे थे। इस काम में हमें वन्यजीवन पर फिल्में बनाने का ठोस और बहुमूल्य अनुभव तो मिला ही साथ ही हमारी आत्मविश्वास भी बढ़ा और फिर हम बड़े सपने संजोने लगे।

1989 में नौरैड और माइसिनयोर संस्थाओं के आर्थिक अनुदान के कारण हम केरल की सूनी घाटी (साइलेंट वैली) के संपूर्ण पर्यावरण चक्र और रेनफारेस्ट पर एक महत्वाकांशी फिल्म बनाने लगे। इस फिल्म की शूटिंग में 18 महीने का समय लगा। यह 18 महीने पूरी तरह से चुनौतियों से भरे, कड़ी मेहनत, रोमांच और नयी-नयी खोजों के थे। इन यात्राओं में हमने जो कुछ भी वहां देखा उसका वर्णन करने के लिये अगल से पूरी एक किताब लिखनी होगी!

अगर मुझे इनमें से एक यादगार यात्रा को चुनने का मौका मिले तो वो थी जिसमें केरल के सघन जंगलों में हमने धनेष यानि ग्रेट पाईड हौर्नबिल के घोंसले की शूटिंग की। मार्च अंत होने वाला था और बाहर बेहद गर्मी थी। मैं एक छोटे से पहाड़ी नाले के पास खुले जंगल में अपने कैंप में था। मेरे साथ में चेन्नई का एक साथी था और कुछ कादार जनजाति के आदिवासी थे, जिन्होंने उस घोंसले को खोजा था और जो मेरी शूटिंग में मदद कर रहे थे। गर्मी इतनी प्रबल थी कि नाला लगभग सूख चुका था। पीने के पानी के लिये हम नाले के रेतीले तट में गड्ढा खोदते। उसमें से बूंद-बूंद कर रिसते हुये पानी को हम आपस में बहुत सावधानी बांटते।

जिस पेड़ में घोंसला था वो हमारे कैंप से, 45 मिनट दूर, ऊंची और कठिन चढ़ायी पर था। घोंसला एक चिकने तने वाले पेड़ के कोटर में था और 80 फीट की ऊंचाई पर था। मादा धनेष ने अपने आपको कोटर में बंद कर लिया था। घोंसले में से चोंच बाहर निकालने के लिये सिर्फ एक झिरी खुली थी। अंदर, अंडों में से बच्चे निकल आये थे और सावधानी से सुनने पर आप, खाने के समय बच्चों की भीख मांगती आवाजों को सुन सकते थे।

प्रत्येक घंटे पर नर पक्षी खाना लेकर आता जिनमें बच्चों और मादा के लिये ज्यादातर अंजीरे होतीं। नर के पंखों के फड़फड़ाने से जोर की आवाज होती जिसे काफी दूर से सुना जा सकता था। नर देखने में विशाल और शानदार था। उसका शरीर काला और सफेद, गर्दन पीली और उसकी एक बहुत बड़ी, मुड़ी हुई सुनहरे रंग की चोंच थी। उसकी आंखें खूनी लाल थीं।

कादार लोगों की मदद से मैंने घोंसले के सामने 80 फीट ऊंचाई पर छिपने के लिये एक मचान बनायी थी जिससे कि मैं धनेष के घोंसले की ही ऊंचाई पर आ सकूँ। मैंने मचान पर चढ़ने और उतरने के लिये एक रस्सी की सीढ़ी भी बनायी थी। पक्षियों को कोई विघ्न नहीं पड़े इसलिये मैं सुबह होने से पहले अंधेरे में ही मचान पर चढ़ जाता था और रात होने के बाद ही नीचे उतरता था। मैं पूरे दिन चौकड़ी मारे अपनी छोटी मचान में बैठा रहता और मेरा कैमरा हमेशा घोंसले की झिरी की ओर होता। हर बार जब नर पक्षी खाना लेकर वापिस लौटता तो मेरा दिल उछलने लगता। वो कभी भी सीधा घोंसले तक नहीं आता। वो पहले पास के किसी एक पेड़ की टहनी पर उतर कर आसपास खतरे का सर्वेक्षण करता। जब उसे खतरे का कोई निशान नजर नहीं आता तभी वो घोंसले के पास आता। वो घोंसले के पास पेड़ की छाल को अपने पंजों से कस कर पकड़े रहता और फिर अपने मुंह में से एक-एक करके मादा को 40-50 अंजीरे देता।

जब नर के पास अंजीरें खत्म हो जातीं तो फिर वो घोंसले से उड़कर मेरी मचान पर आता, जिससे मचान का पूरा

ढांचा चरमराने लगता। वो वहां कुछ मिनट रुक कर अपनी बड़ी चोंच को साफ करता और अपने पंखों को संवारता। मचान की छिपने वाली जाली के छेदों में से मैं उसे अपने से केवल एक फुट की दूरी पर बैठा पाता। इस वजह से मैं उस समय सांस भी नहीं ले पाता था! मैं प्रार्थना करता था कि उस समय कहीं मुझे छींक न आ जाये! उस इस पूरे दौर में नर धनेष ने कभी भी मचान पर मेरे बैठे होने का शक नहीं किया!

साइलेंटवैली के ऊपर फिल्म बनाने के बाद मुझे लगा कि मैं जो कुछ अपने आप सीख सकता था वो मैंने अब सीख लिया था। मेरी हालत कुयें में पड़े मेंढक के समान थी। विदेशों में वन्यजीवन को फिल्मों पर किस प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं उन्हें जानना और उनसे सीखने मेरे लिये अब बहुत जरूरी था।

इस फिल्म को बनाने के बाद मुझे इनलैक्स स्कालरशिप मिल गया। इस वजीफे के कारण ही मैं इंग्लैंड में आक्सफोर्ड साइंटिफिक फिल्मस नाम की कंपनी के साथ 8 महीने गुजार सका।

वहां रहते हुये मैंने वन्यजीवन की फिल्मों में प्रयोग किये जाने वाले कई विशेष तकनीकों के बारे में सीखा। मैं इंग्लैंड में घूमा और वहां वन्यजीवन पर फिल्म बनाने वाले कई लोगों से भी मिला। इससे मुझे कई बातें समझ में आयीं और इसी मदद की वजह से ही मैं अपने पेशे में एक ऊंची छलांग लगा पाया।

इस दौरान मैंने **साइलेंटवैली** फिल्म को, वन्यजीवन से संबंधित कई अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में प्रदर्शित करने के लिये भेजा। मुझे तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब सभी समारोहों में इस फिल्म को पुरुस्कार मिले। अब अंतर्राष्ट्रीय फिल्म निर्माताओं की बिरादरी में मुझे वन्यजीवन की फिल्मों पर एक कुशल फिल्म निर्माता के रूप में जाना जाने लगा।

जल्द ही मुझे काफी काम मिलने लगे। मैं जब भारत लौटा तो एक काम वापिस लेकर लौटा। ब्रिटेन में चैनल 4 पर एक श्रृंखला दिखायी जा रही थी जिसका नाम था **वाइल्डइंडिया**। उसमें मुझे कैमरामैन का काम मिला। कुछ महीनों के बाद यह काम खत्म हो गया। तब हमने नेशनल ज्योग्रफिक टेलीविजन को भारतीय नाग (कोबरा) पर आधा घंटे की एक फिल्म बनाने का प्रस्ताव भेजा जिसे मंजूरी मिल गयी। वो लोग भारत में चूहों पर एक फिल्म बना रहे थे और उसके लिये भी मुझे उनसे शूटिंग का काम मिला।

इन फिल्मों के खत्म होने तक मैंने कर्नाटक में नागरहोल के जंगलों पर एक फिल्म बनाने के लिये धन का इंतजाम कर लिया था। इस फिल्म की शूटिंग में भी 18 महीने लगे। ये महीने आनंद और रोमांच से भरे थे।

‘नागरहोल - टेल्स फ्रॉम एन इंडियन जंगल’ नाम की इस फिल्म को सारी दुनिया में दिखाया गया है। इसे भारत में डिस्कवरी चैनल पर कई बार दिखाया जा चुका है। हमने इस फिल्म का तमिल एक संस्करण भी बनाया है। इस समय हम इसके कन्नड संस्करण पर काम कर रहे हैं जिससे कि भारत में गैर-अंग्रेजी भाषी लोग इसका आनंद ले सकें।

हमारे देश में वन्यजीवन की अद्भुत संपदा है परंतु वन्यजीवन के संरक्षण की चेतना बहुत कम है। अपनी फिल्मों द्वारा मैं एक ओर लोगों को इस अद्भुत संपदा के दर्शन कराना चाहता हूं और दूसरी उनसे हर कीमत पर इसकी रक्षा की अपील करना चाहता हूं।

मैं बेहद खुशनसीब हूं कि मैं एक ऐसा पेशा अपना पाया जिसमें मुझे बेहद आनंद और सकून मिलता है। परंतु ऐसा नहीं कि इसमें सिर्फ मजा ही है। इसमें मुझे तमाम परेशानियां भी झेलनी पड़ीं हैं। इस लेख में मैंने वन्यजीवन पर फिल्में बनाते समय कुछ यादगार अनुभवों को ही बयान किया है। परंतु ऐसे भी कई मौके थे जब मैं पूरी तरह निराश और हताश हो गया था। यह एक बहुत कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है और इसमें आपको हमें पूरी तरह सर्तक रहना पड़ता है।

वन्यजीवन को फिल्म करना तो मजेदार काम है परंतु वहां तक पहुंचने के लिये आपको पहले तमाम अड़चनों को पार करना होगा। फिल्मों के लिये धन की जुगाड़ काफी कठिन काम है और उसके बाद सरकारी जंगलों में घुसने की अनुमति प्राप्त करने के लिये भी काफी धैर्य और सहनशीलता चाहिये - शायद जंगली जीवों को फिल्म करने से कहीं अधिक!

एक बार आप जंगल में गये तो वहां आपको सुबह से रात तक, बारिश और धूप में, छोटी खतरनाक मचानों पर सिकुड़े हुये बैठना पड़ेगा या फिर सड़क पर उछलती जीप में सवारी करनी होगी और कभी-कभी पैदल चलकर अपनी जान को खतरे में डालना होगा। कभी-कभी 10 दिनों तक लगातार मेहनत के बाद आप पायेंगे कि आप कोई खास

अच्छी शूटिंग नहीं कर पाये हैं। सफलता के लिये आपको डटकर लगातार काम करते रहना होगा।

तो फिर मेरी सफलता का राज क्या है? शायद इसमें मुख्य बात बचपन से ही मेरी प्राकृतिक वन्यजीवन को देखने, समझने की गहरी चाह, उत्साह और रोमांच की ललक है। पर मैं अपने माता-पिता और अन्य मित्रों की सहायता और प्रोत्साहन के बिना इतनी दूर नहीं आ पाता। अगर मेरे अंदर कोई चिंगारी नहीं देखते तो वो लोग भी शायद मेरी मदद न करते। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिये यह जरूरी है कि आपको उस चीज में गहरी चाह हों!

सीमा भट्ट

जब सीमा भट्ट ने 'पर्यावरण' और 'जैविक विविधता' के मुद्दों पर काम करना शुरू किया तब यह विषय इतने लोकप्रिय नहीं थे। इसलिये वो इस क्षेत्र में जीवविज्ञान और कीटविज्ञान के परंपरागत विषयों के जरिये आयीं। यात्राओं और घुमक्कड़ी में गहरी रुचि के कारण ही उन्होंने पढ़ाई को अन्य गतिविधियों - जैसे डब्लूडब्लूएफ द्वारा आयोजित शिविरों आदि से जोड़ने की सोची। इसी विशेष संयोजन की वजह से ही वो तमाम अलग-अलग काम कर पायीं हैं और समृद्ध अनुभवों से गुजरी हैं। शायद यही एक दिन उनका 'खास पेशा' बन जाये - जिसमें संरक्षण के कामों में आम लोगों की भागीदारी हो। वो हमेशा 'कुछ नया' करने को तैयार रहती हैं। सीमा नये क्षेत्रों और आयामों को खोजने के लिये तत्पर हैं - चाहे वो भौगोलिक हों या फिर उनके पेशे से संबंधित हों।

नाम, स्थान, जानवर, चीज . . .

मुझे से लोग अक्सर पूछते हैं कि मैं आजीविका के लिये क्या करती हूँ। यह एक कठिन प्रश्न है। मैं पर्यावरण/संरक्षण/और जैविक विविधता की विशेषज्ञ हूँ। आप जैसे चाहें इसे उल्टा-पुल्टा करके देखें - मैंने जैविक विविधता के संरक्षण को ही अपना पेशा बनाया है। इस अजीबोगरीब पेशे को आखिर मैंने क्यों चुना? इसकी शुरुआत कहाँ हुयी यह कहना कठिन होगा। मेरे परिवार में मेरे माता-पिता के अलावा मेरी दो बड़ी बहनें हैं। सबसे छोटी होने के कारण शायद मुझे इस अजीबोगरीब पेशे को चुनने में अवश्य कुछ छूट मिली। माता-पिता ने बचपन से ही हममें प्रकृति प्रति प्रेम के बीज बोये थे। मुझे याद है कि जब कभी हमारा पूरा परिवार यात्रा पर जाता तो मेरे माता-पिता हमेशा सामान्य पक्षियों की ओर इशारा करके उनके हमें नाम बताते। उन्होंने ही नीलकंठ (ब्लू जे) और किलकिला (किंगफिशर) पक्षियों से पहली बार मेरा परिचय कराया। मेरे माता-पिता ने मुझे आसपास 'देखने' के लिये प्रोत्साहित किया।

बचपन में हमारा एक प्रिय खेल था जिसमें खिलाड़ियों को किसी विशेष अक्षर से नाम, स्थान, जानवर, चीजें . . . आदि लिखने होते थे। इसमें दुर्लभ और अजीबोगरीब पक्षियों और जानवरों ने नाम खोजना बड़ा चुतौनी भरा काम होता था। इन्हें खोजने के लिये मैं प्रकृति से संबंधित पुस्तकें पढ़ने लगी और इससे मुझे इस विषय के बारे में और अधिक जानने का प्रोत्साहन मिला। मैंने जेरेल्ड डरल और जिम कार्बेट जैसे लेखकों की पुस्तकें भी पढ़ीं और फिर मेरी दूरदराज की मनमोहक जगहों पर यात्रा करने और वहाँ के विचित्र पक्षी और प्राणी देखने की इच्छा बहुत प्रबल होती गयी। इसके सबके कारण मेरे लिये स्कूल में जीवविज्ञान का विषय पढ़ना अनिवार्य हो गया। कालेज में भी मैंने प्राणिविज्ञान विषय को चुना। मुझे इस विषय में बस मजा आता था। आगे जाकर मैं उसका किस प्रकार उपयोग करूंगी यह मुझे नहीं पता था। मेरी बड़ी बहन वनस्पतिशास्त्र में स्नातक होने के बाद डाक्टरी पढ़ने चली गयी। यह पेशा मेरे लिये अपना पाना संभव न था। परिवार में सबसे छोटे होने का भी फायदा था क्योंकि किसी ने भी मुझ पर किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं डाला। स्नातक की उपाधि के आखिरी साल में मैंने एक राष्ट्रीय अभियारण्य में वर्ल्ड वाइल्ड वाइड फंड (डब्लूडब्लूएफ - इंडिया) द्वारा आयोजित एक शिविर में भाग लिया। इसमें मैं पूरी तरह से रम गयी, या कहिये फंस गयी! मैं क्या करना चाहती थी, इसकी मुझे अब सही अनुभूति हुयी। मैं पर्यावरण संरक्षण के काम को अपना शौक और पेशा दोनों ही बनाना चाहती थी। उच्च शिक्षा के लिये पर्यावरण विज्ञान या वन्यजीवन विज्ञान जैसे विषय मैं अवश्य पढ़ना चाहती। परंतु तब इस प्रकार के विषय भारत के किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ाये जाते थे। परंतु संरक्षण

का पेशा अपना करने के लिये उचित उच्च शिक्षा नितांत आवश्यक थी। इसी वजह से मैंने दूसरा सबसे अच्छा विकल्प चुना और कीटविज्ञान (कीड़ों के अध्ययन) में एमएससी करने का निश्चय किया। इस विषय की पढ़ाई के दौरान मुझे कम-से-कम कक्षा से बाहर निकलने का मौका तो प्राप्त होगा।

एमएससी करते समय मैं डब्लूडब्लूएफ - इंडिया के लिये एक स्वयंसेवी कार्यकर्ता जैसे काम करने लगी। यही शायद एक ऐसा मौका था जब मेरी मां ने आपत्ति उठायी। उस समय बिरला ही कोई छात्र, पढ़ाई के साथ-साथ काम करता था। मां को लगा कि काम करने से परीक्षा में मेरे कम नंबर आयेंगे। अब मेरे सामने एक स्पष्ट चुनौती थी! मैं रोजाना 25 किलोमीटर की यात्रा करती, जिसमें मुझे दो बसें बदलनी पड़तीं, जिससे कि मैं प्रतिदिन डब्लूडब्लूएफ - इंडिया के दफ्तर में कुछ घंटे बिता सकूँ। मैंने अच्छे नंबर लाने के लिये खूब जमकर पढ़ाई भी की। मेरे कुछ प्रोफेसरों का ध्यान वन्यजीवन में मेरी गहरी रुचि की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने मुझे इस काम में प्रोत्साहित भी किया। मुझे एक प्रोफेसर की अभी भी याद है। वो हमें नियमित रूप से पक्षी निरीक्षण के लिये बाहर ले जाते थे।

एमएससी की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मुझे डब्लूडब्लूएफ - इंडिया में ही नौकरी मिल गयी। इस प्रकार संरक्षण के क्षेत्र में मैंने काम करना शुरू किया। भारत के जंगलों में घूमने-फिरने के मेरे रोमांचक सपने धरे रह गये क्योंकि अगले पांच वर्ष मुझे अपनी मेज पर ही, पर्यावरण संबंधी जानकारी को एकत्रित और व्यवस्थित करने में गुजारने पड़े। अपना काफी खाली समय बाहर बिताने के बाद भी मैं अपनी नौकरी से ऊब गयी थी। परंतु अब मैं जब पीछे मुड़ कर देखती हूँ तो शायद यह साल बेकार नहीं गये। पर्यावरण के क्षेत्र में मेरे लिये यह एक बहुत महत्वपूर्ण उन्मुखीकरण था और शायद इसी के कारण मैं अमरीका से पर्यावरण विज्ञान में एक और उच्च डिग्री प्राप्त कर पायी। मैंने इस डिग्री के लिये जी तोड़ कर मेहनत की परंतु उसमें मुझे बहुत मजा भी आया। मैं जो कुछ भी पढ़ रही थी उसका मैं जिंदगी से रिश्ता जोड़ सकी क्योंकि मैं संरक्षण की असली दुनिया में थी। मैं अधिक-से-अधिक सीखने को तत्पर थी जिससे कि मैं उस ज्ञान को भारत वापिस लौट कर उपयोग में ला सकूँ।

उसके बाद से मैं भारत और नेपाल में, जैविक विविधता से संबंधित प्रकल्पों का समन्वय कर रही हूँ। इनका उद्देश्य उन तरीकों को खोजना है जिससे इन देशों की जैविक विविधता को स्थानीय समुदायों की सहायता से संरक्षित रखा जा सके। इन अनूठे प्रकल्पों में प्राकृतिक उत्पादों के लिये छोटे धंधे शुरू किये गये हैं जिससे कि स्थानीय लोगों को संरक्षण का कुछ आर्थिक लाभ भी मिले। मैंने कर्नाटक में, बिलिरंगन जंगलों में, सोलिगा आदिवासियों के साथ काम किया है और शहद इकट्ठा करने, उसके रखरखाव और उसे बेंचने में उनकी सहायता की है। गढ़वाल की पहाड़ियों में स्थानीय साथियों की मदद से हमने लोगों को, बांझ के पत्तों से पर्यावरण-मित्र तरीके से टसर रेशम बनाया सिखाया है। सिक्कम में हमने पर्यावरण-मित्र, पर्यटन को सफल बनाने के तरीके सुझाये हैं। नेपाल में हमने एक बिल्कुल दूरदराज के जिले में स्थानीय समुदाय की, एक विशेष पौधे की जड़ों से, कुछ सुगंधित तेल निकालने में सहायता दी है। नेपाल में एक और प्रकल्प के तहत हमने, गैंडों और बाघ के एक इलाके में, समुदाय आधारित, पर्यावरण-मित्र पर्यटन तरीके से, रोजगार बढ़ाने के सुझाव दिये हैं।

जब मैं हाथी की पीठ पर बैठकर गैंडों को निहारती हूँ या फिर बर्फ से ढंकी पहाड़ियों पर से उगते सूरज की छटा को देखती हूँ तो मैं यह सोचकर धन्य हो जाती हूँ कि इन मनोरम नजारों का मजा लेने के लिये भी मुझे पैसे मिल रहे हैं! परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि इन अद्भुत अनुभवों के लिये बहुत श्रम भी करना पड़ता है। इसमें लंबी, धूल भरी यात्रायें, पैरों में छाले, चिचड़ी, जोंक और कम उत्तेजक (परंतु जरूरी) काम, जैसे विस्तार से रिपोर्ट लिखना, हिसाब-किताब रखना आदि कार्य शामिल होते हैं। जब मैं अपने काम के कुछ प्रत्यक्ष नतीजे देखती हूँ तो मुझे बेहद खुशी मिलती है।

इस प्रकार के पेशे में इंसान को अपने शरीर को एकदम फिट रखना पड़ता है। साथ में मानसिक रूप से भी इंसान को हर प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने के लिये तैयार रहना पड़ता है। काम के दौरान भूस्खलन, आदमखोर बाघ, पागल हाथी के साथ-साथ चोर-उचक्कों को भी झेलना पड़ता है। इस कार्य में, अलग-अलग प्रकार के लोगों के साथ मिलकर काम करने की क्षमता भी होनी चाहिये।

मैं आपको एक अविस्मरणीय अनुभव सुनाती हूँ जिससे आपको 'फील्ड में काम करने' का कुछ अंदाज लग सकेगा। हम अपने एक प्रकल्प को देखने के लिये नेपाल के रायल चितवन नेशनल पार्क में गये थे। हमें वहां एक स्थानीय स्वयंसेवी संस्था के शोध कक्ष में रुकना था। यहां के कमरों में न तो बिजली थी और न ही कोई शौचालय।

हमें रात को बाहर के शौचालय में जाने के लिये टार्च लेकर जाने की हिदायत दी गयी क्योंकि वहां रात को गेंडे आते थे। किसी ने भी इस बात पर विश्वास नहीं किया। कुछ दिनों के बाद मैं जब एक रात को उठी तो मुझे बाहर किसी के जुगाली करने की आवाज आई। बाहर देखने पर मुझे एक गेंडा दिखायी दिया जो मध्यरात्रि में मजे से कुछ खा रहा था। उसके बाद से मैंने रात के समय, शौचालय को इस्तेमाल करना ही बंद कर दिया।

पहली सिक्किम यात्रा के दौरान पहले हमें एक स्थान पर ले जाया गया। वहां से हमें एक पर्यावरण-मित्र पर्यटन स्थल तक जाने के लिये पैदल यात्रा करनी थी। सात घंटे की जीप यात्रा के बाद सड़क पर भूस्खलन हो गया जिसके कारण हमारा आगे जाना असंभव हो गया। तब हमने दूसरा रास्ता अपनाने की सोची। परंतु चार घंटे के बाद हमने दूसरी सड़क को भी भूस्खलन द्वारा बंद पाया। उस समय तक रात हो गयी थी और तेज बारिश पड़ने लगी थी। उसके बाद हमने सबसे पास के शहर में रात बितायी जहां हमें बिस्तर के अलावा सामुदायिक शौचालय की सुविधा उपलब्ध हुयी। अगली सुबह हम लोग भूस्खलन के ऊपर पैदल चढ़े फिर दूसरी ओर आकर हमने अपने गन्तव्य के लिये आठ घंटे की पैदल चढ़ायी शुरू की। चढ़ायी का रास्ता बेहद खूबसूरत था, परंतु वहां पर जोंकों की भी भरमार थी जिसकी वजह से हमें काफी सावधानी बरतनी पड़ी। सिक्किम में हमारा स्वागत काफी दिलचस्प रहा।

हमें बार-बार बताया गया कि नेपाल का हुमला जिला बहुत दूर और बीहड़ इलाके में बसा है। हमें इस 'दूरी' का अंदाज वहां पहुंचने के बाद ही लगा। एक आठ सीटों वाले हवाईजहाज ने हमें 12,000 फीट (4,000 मीटर) पर बसे सिमिकोट के जिला मुख्यालय में छोड़ा। सिमिकोट की यात्रा पूर्णतः मौसम पर निर्भर थी। सिमिकोट के बाद न तो कोई सड़कें थीं और न ही आने-जाने का अन्य कोई साधन। आप केवल पैदल ही इधर से उधर आ-जा सकते थे। और वहां पैदल चलना कोई आसान काम नहीं था। इसकी सही अनुभूति मुझे अपने पैरों के नाखूनों से हुयी! एक प्रकल्प स्थल तक पहुंचने के लिये हमें तीन घंटे तक कठिन उतराई करनी पड़ी। अपने तंबुओं में रात गुजारने के बाद (जहां भारी मात्रा में कुटकी और पिस्सू थे) हमने पास के गांव में जाने की सोची। ऊंचे-नीचे दुर्गम पहाड़ों पर पांच घंटे की यह यात्रा मेरे जीवन में सबसे कठिन यात्रा थी। परंतु इसमें हमें कुछ अद्भुत प्राकृतिक सुंदरता भी देखने को मिली! इतनी चढ़ाई की यात्रा के फलस्वरूप मेरे पैर के अंगूठों के दोनों नाखून निकल गये।

मैंने अक्सर ऐसी स्थितियों में काम किया है जहां मैं अकेली महिला होती हूं - परंतु मैंने ऐसे हालातों की कभी परवाह नहीं की है। मैं कुछ अलग हूं इसका मुझे किसी ने कभी कोई अहसास नहीं होने दिया। मैं इस तथ्य पर इसलिये जोर दे रही हूं जिससे महिला होने के कारण ऐसा पेशा चुनने में किसी को कोई बाधा न आये। सीखना हमेशा जारी रहता है, इस बात को मैं इस क्षेत्र में पंद्रह वर्ष काम करने के बाद समझी हूं। हरेक स्थान, हरेक यात्रा और हरेक समुदाय ने मुझे कुछ न कुछ सिखाया है। मैंने इस समझ को बाद में, कहीं न कहीं उपयोग किया है। इस पेशे में खुले दिमाग से काम करना बहुत महत्वपूर्ण है।

दीपक दलाल

दीपक दलाल ने अपनी प्रारंभिक पढ़ाई लवडेल, ऊटी में की और उसके बाद उन्होंने केमिकल इंजिनियरिंग में डिग्री हासिल की। एक युवा के लिये यह पेशा चुनना सही भी था क्योंकि उसे बाद में परिवार के इंजिनियरिंग उद्योग की कमान को संभालना था। उसने ऐसा किया भी। परंतु उद्योग ने दीपक को न तो प्रेरित किया न हो उसमें उसे कोई रास आया। कई वर्षों तक असंतुष्टी महसूस करने के बाद दीपक ने अंत में बच्चों के लिये लेखन करने की एक बिल्कुल नयी राह चुनी। साहित्य और प्राकृतिक विज्ञान में कोई औपचारिक शिक्षा न होने के बावजूद दीपक ने इस चुनौती को स्वीकारा और प्रकृति की खोज के चमत्कारी अनुभवों को अपनी पुस्तकों के जरिये बच्चों तक पहुंचाया। इस पक्षी और वन्यजीवन प्रेमी को फोटोग्राफी, यात्राओं, विंडसरफिंग और नौ-चालन का बहुत शौक है और यह सब रुचियां उसके लेखन को समृद्ध करती हैं। दीपक ने अभी तक दो पुस्तकें लिखी हैं - *लक्ष्यद्वीप एडवेंचर्स* और *रणथंबोर एडवेंचर्स*।

वन्यजीवन संरक्षण के लिये लेखन

मुझे लेखक बनने के लिये किस चीज ने प्रेरित किया? पेशे के रूप में बच्चों की पुस्तकें लिखने का काम बहुत

कम लोग ही अपनाते हैं। यह विकल्प कम्प्यूटर, इंजिनियरिंग, डाक्टरी, अकाउंटिंग आदि, मानक पेशों से बहुत भिन्न है।

मैंने एक केमिकल इंजिनियर की हैसियत से अपने जीवन का आरंभ किया। क्योंकि मेरा परिवार इंजिनियरिंग उद्योग में था इसलिये बिना सोचे ही मैंने इस पेशे को अपना लिया। केमिकल इंजिनियरिंग की पढ़ाई करते समय मेरा ध्यान इंजिनियरिंग की पढ़ाई की अपेक्षा नेशनल ज्योग्राफिक, सैक्चुरी और बीएनएचएस की पत्रिकाओं की ओर आकर्षित हुआ। इंजिनियरिंग की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब मैंने विश्वविद्यालय से उद्योग और उत्पादन की असली दुनिया में प्रवेश किया तो मैं हतोत्साहित हुआ और इस प्रकार के काम में मेरा मन बिल्कुल नहीं लगा। औद्योगिक उपकरणों का निर्माण कर उन्हें बेचने के काम ने, मुझे बिल्कुल भी प्रेरित नहीं किया।

मुझे किस चीज में सबसे अधिक मजा आता है? यह सवाल मैंने पहली बार अपने आप से पूछा। वो कौन सी चीज है जो मुझे प्रेरित करती है? क्या कोई ऐसी चीज है जो मुझे दिन-रात काम करते रहने के लिये उत्साहित करेगी, एक ऐसा काम जिसमें लंबे घंटे गुजारने के बाद भी मैं ऊबूंगा नहीं। एक ऐसा काम जिसमें मुझे मजा आयेगा और जिसे मैं हर रोज, उत्साह और उमंग के भाव से कर पाऊंगा?

मैंने अपने दिल को गहराई से टटोला। इस मंथन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मुझे पढ़ाने में आनंद आता है। अपने प्रकृति प्रेम को अन्य लोगों के साथ, विशेषकर बच्चों के साथ बांटने में मुझे बहुत संतुष्टि मिलती है। वैसे मैंने इस बारे में पहले कभी सोचा नहीं था परंतु मुझे इस बात पर आत्मविश्वास था कि मैं बच्चों की कल्पनाशक्ति को उड़ान देने वाली कहानियां लिख पाऊंगा।

इसलिये कई सालों तक एक दुखी इंजिनियर रहने के बाद मैंने अपना अंतिम निर्णय लिया। अगर मैं बच्चों के लिये लिखना चाहता था तो इस काम को मैं अब बखूबी करूंगा। मैंने एक ऐसा नया पेशा अपनाने का निर्णय लिया जिसमें मुझे खुशी और संतोष दोनों मिले।

परंतु इस सब को कहना तो आसान था परंतु इसे करना काफी कठिन था। इतने वर्षों के इंजिनियरिंग काम को त्याग कर एक नया पेशा अपनाना असल में एक कठिन काम था। परंतु मैंने इस चुनौती को स्वीकारा। लिखना कोई आसान काम नहीं है, परंतु इस काम को जो चाहे सीख सकता है। यह जीवन के किसी भी अन्य कार्य के समान है: आप उसे जिनती अधिक लगन और मेहनत से करेंगे आप उसमें उतने ही अधिक पारंगत होते चले जायेंगे। मुझे इतना अवश्य लगा कि अगर मैंने कालेज में इंजिनियरिंग की बजाये अंग्रेजी साहित्य पढ़ा होता तो मैं इस काम में कहीं अधिक तेजी से प्रगति कर पाता। तब मुझे अलग-अलग लेखन शैलियों और साहित्यिक कृतियों का अच्छा ज्ञान होता और इससे मुझे अपने काम में बहुत सहायता मिलती। अगर अंग्रेजी साहित्य की बजाये मैंने कालेज में वन्यजीव विज्ञान पढ़ा होता तो उससे मुझे प्राणिविज्ञान और वनस्पतिविज्ञान का एक पुख्ता आधार मिलता। जब मैं अपनी पुस्तकों के लिये शोधकार्य करता हूं तो इस प्रकार की सुदृढ़ पृष्ठभूमि का अभाव मुझे अक्सर खलता है।

यह मुझे पेशे के सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर ले आता है। पेशे का चयन! यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण निर्णय है। काश कि स्कूल के दिनों में मैंने इस प्रश्न पर थोड़ा अधिक मनन-चिंतन किया होता! इस गंभीर प्रश्न को नजरंदाज करने के कारण ही मैं इंजिनियरिंग में चला गया और इस प्रकार मैंने कई बहुमूल्य वर्ष गंवा दिये। अगर मैंने अपने विवेक से काम लिया होता तो शायद मैंने अपने साहित्यिक जीवन में तेजी से प्रगति की होती और फिर शायद मैं बेहतर पुस्तकें भी लिख पाता।

जो बच्चे अभी भी स्कूल में हैं उनके लिये यह विकल्प अभी भी खुला है। मैं चाहता हूं कि अपना पेशा चुनने से पहले आप गहराई से उसके बारे में सोचें। आप अपने आप से एक अहम सवाल पूछें: 'मैं जो कोई पेशा चुन रहा हूं क्या मैं उसमें पूरे जीवन भर खुश रहूंगा? क्या वो मुझे उत्साहित करेगा? क्या उसमें मुझे संतोष और खुशी मिलेगी?' मुझे पता है कि स्कूली बच्चों के लिये इन सभी प्रश्नों के उत्तर दे पाना कठिन होगा, परंतु फिर भी इन प्रश्नों को पूछने से उनके दिमाग में अनेकों नई संभावनायें जगेंगी और यह एक बहुत अच्छा काम होगा।

पेशे के चयन संबंधी चर्चा को मैं अब खत्म करूंगा। मैं प्रकृति और वन्यजीवन के उन पक्षों पर थोड़ा प्रकाश डालूंगा जिन्होंने मुझे प्रेरित और उत्साहित किया है। मुझे बाहर की दुनिया ने शुरू से ही आकर्षित किया है। प्रकृति के प्रेमजाल में मैं धीरे-धीरे करके ही फंसा। शायद बाहर घूमने-फिरने और यात्राओं के कारण ही मुझ में प्रकृति के प्रति अनुराग पैदा हुआ। घुमक्कड़ी करते हुये, पहाड़ों पर चढ़ते हुये, समुद्री यात्रायें और विंडसरफिंग करते हुए आपका प्रकृति के साथ एक निकटता का संबंध बनता है। प्रकृति अद्भुत सुंदरता से परिपूर्ण है और जब एक बार आप उसकी

खूबसूरती को निहारने लगते हैं तो वो आपको सदा के लिये वशीभूत कर लेती है।

छोटी और सरल चीजें मेरे मन को मोह लेती थीं। जैसे मकड़ियों के जाल पर मोतियों जैसी चमकती ओस की कुछ छोटी बूंदें। जब सूरज की किरणें इन बूंदों से होकर गुजरती हैं तो वो सैकड़ों इंद्रधनुषों का निर्माण करती हैं। सूर्यास्त की मनोरम छटा और लालिमा मुझे हमेशा अपनी ओर खींचती है। बदलते मौसम का जादुई तमाशा हमेशा जारी ही रहता है। धीरे-धीरे धरती, भूरी ओढ़नी उतार कर हरी चादर लपेटती है। प्राणी और पौधे इस प्राकृतिक चक्र के अनुसार अपने आपको किस प्रकार ढालते हैं वो मुझे हमेशा मंत्रमुग्ध करता है।

जानवरों ने मुझे हमेशा ही आकर्षित किया है। परंतु जहां तक चिड़ियों को सवाल है उनको मैं बहुत समय तक सिर्फ पेड़ों पर शोर मचाने वाले जीव ही मानता था। मुझे याद है कि रक्तासन बुलबुल (रेडवेंटेड बुलबुल) वह पहली चिड़िया थी जिसे मैंने बहुत ध्यान से देखा और जिसकी मैंने डा सलीम अली की पुस्तक **द बुक आफ इंडियन बर्ड्स** से पहचान की। बाईनौक्यूलर (दूरबीन) से पक्षियों को निहारने का आनंद कई गुना बढ़ गया। अचानक वो शोर मचाते जीव मुझे अद्भुत सुंदर प्राणी लगने लगे। अलग-अलग लेंसों की सहायता से मैं शक्करखोरे (सनबर्ड) के गहरे नीले पंखों को, धूप में झिलमिलाते हुये देख सका। मैं बबूना (व्हाइट आई) नामक चिड़िया की पूरनमासी के चांद जैसी आंख को निहार सका और सुनहरी पीठ वाले कठफोड़वे (गोल्डन बैकड वुडपैकर) के रंगों की छटा का आनंद ले सका। मैं चिड़ियों के बीच, अंतरों को पहचानने लगा। मैं उनकी मधुर आवाजों और गीतों को ध्यान से सुनने लगा और प्रवासी पक्षियों की उड़ानों को समझने लगा।

पक्षी-निरीक्षण मेरे जीवन में अनेकों खुशियां लाया है और यह एक ऐसा शौक है जिसकी सिफारिश मैं युवा पीढ़ी के सभी लोगों से करना चाहूंगा। यह एक ऐसी रुचि है जिससे गहरे संतोष के साथ मानसिक तुष्टि भी मिलेगी।

मैंने बच्चों के लिये क्यों लिखना शुरू किया? इसके असल में कई कारण हैं। यह दुख की बात है, मगर सच है कि भारत में बच्चों के लिये लिखने वालों का नितान्त अभाव है। छोटे बच्चों के लिये प्रकृति पर लिखी कहानियों की संख्या लगभग नगण्य है। बच्चों को केवल पाठ्यपुस्तकों द्वारा ही प्रकृति और वन्यजीवों के बारे में कुछ जानकारी मिलती है, या फिर इन विषयों को उबाऊ भाषणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि बहुत से बच्चे बड़े, भीड़-भड़के वाले शहरों में रहते हैं इसलिये उन्हें प्रकृति से प्रत्यक्ष भेंट करने का या उसके बारे में जानने का बहुत कम ही मौका मिलता है।

स्कूली शिक्षा में, अन्य चीजों को ताक पर रखकर, पूरा जोर अच्छे नंबर लाने पर ही होता है। इस कारण भी समस्या ने एक विकराल रूप धारण कर लिया है। प्रकृति और प्राकृतिक चक्रों के ज्ञान को एक तरफ पटक दिया गया है। मेरी पुस्तकें इस कमी को पूरा करने की कोशिश करती हैं। मैं अपनी कहानियों के जरिये प्राकृतिक ज्ञान का एक मजबूत आधार प्रदान करने का प्रयास करता हूँ।

अपनी कहानियों में एक अन्य पक्ष पर भी जोर देता हूँ। उनके जरिये मैं देश की विविधता पर प्रकाश डालता हूँ। भारत में कितने ही सुंदर और रमणीक स्थान हैं। लक्ष्यद्वीप में मूंगे के द्वीप हैं, अरुणाचल और बंगाल में रेनफारेस्ट हैं और हिमालय पर्वत की गोद में बसे सिक्किम, हिमाचल और कश्मीर के राज्य हैं। यह एक अंतहीन सूची है: लद्दाख, अंडमान द्वीप, थार का रेगिस्तान, अभयारण्य और हमारा लंबा तटवर्ती इलाका आदि। हम बहुत खुशानसीब हैं क्योंकि हमारे यहां विविध प्रकार के लोग, स्थान, पक्षी और जानवर पाये जाते हैं। मेरी कहानियां कभी भी शहर की पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं होतीं। उनकी पृष्ठभूमि हमेशा देश का कोई दूर-सुदूर का सुंदर इलाका होता है। मुझे आशा है कि इन कहानियों को पढ़ने के बाद आपको देश के इन क्षेत्रों के बारे में भी जानकारी हासिल होगी।

आज भारत में वन्यजीवन और वन एक खतरे के दौर से गुजर रहे हैं। हमारे राष्ट्रीय जानवर बाघ की जान भी खतरे में है। प्राणियों की कई अन्य प्रजातियां लुप्त होने की कगार पर हैं। लालची उद्योगपति और भ्रष्ट राजनेता जंगलों का सफाया कर रहे हैं। हमारे दुखों की एक अंतहीन सूची है।

मेरी कहानियों का बस एक ही उद्देश्य है - बच्चों में प्रकृति प्रति प्रेम पैदा करना और वन्यजीवन के इस अंधाधुंध विनाश के बारे में उनके दिमाग को खोलना। जल्द ही मेरी पीढ़ी द्वारा किया विनाश तुम्हारी पीढ़ी को विरासत में मिलेगा। कुछ समय बाद हमारे जंगलों और वन अभयारण्यों के प्रबंधन का कार्य भी तुम ही संभालोगे। अगर मेरी कहानियां तुम्हारे हृदय को थोड़ा स्पर्श कर तुम्हें भविष्य का एक जिम्मेदार लीडर बनाने में

सहायक होंगी तो इससे मुझे गहरा संतोष मिलेगा।

सुनीता सिंह

सुनीता ने अपना स्कूली जीवन किस प्रकार शुरू किया? स्कूल जाने से इंकार करके! इसलिये उनका प्राथमिक शिक्षण अन्य बच्चों की अपेक्षा काफी देरी से शुरू हुआ। उन्होंने स्कूल और कालेज की पढ़ाई दिल्ली से की और पर्यावरण विज्ञान की उच्च शिक्षा, गोविंद वल्लभ पंत विश्वविद्यालय से प्राप्त की। एमएससी की डिग्री करते समय ही वो इंडियन फारेस्ट सर्विस में उत्तीर्ण हुईं। फारेस्ट सर्विस में दाखिले के बाद सुनीता ने अनेकों क्षेत्रों में काम किया। वन संरक्षण कार्यों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के विषय में, सुनीता की विशेष रुचि रही है और उनका इसमें काफी योगदान भी रहा है। सुनीता आजकल पश्चिम नासिक, महाराष्ट्र में डिप्टी कंजरवेटर आफ फारेस्ट के पद पर आसीन हैं। यह एक ऐसा काम है जो उन्हें हमेशा चौबीसों घंटे, व्यस्त रखता है।

फारेस्ट अफसर के साथ एक दिन

अपने बचपन के बारे में कुछ बतायें?

हम लोग मूल रूप से बिहार में छपरा जिले के हैं। क्योंकि मेरे पिता दिल्ली में कार्यरत थे इसलिये स्नातक तक की पढ़ाई मैंने दिल्ली में ही की। उसके बाद मैं पर्यावरण विज्ञान में एमएससी करने के लिये उत्तर प्रदेश के पंतनगर विश्वविद्यालय में चली गयी।

क्या आपमें बचपन से ही फारेस्ट अफसर बनने की इच्छा थी?

नहीं, शुरू से तो नहीं। असल में मेरे माता-पिता चाहते थे कि मैं डाक्टर बनूँ (हंसती हैं) और बारहवीं कक्षा तक मैं भी वही बनना चाहती थी। जब मैं बीएससी के पहले साल में थी तब मुझे फारेस्ट सर्विस के बारे में मालूम चला। फिर मुझे ऐसा लगा कि 'यह एक ऐसा पेशा है जिसे मैं अपनाना चाहूँगी!'

क्या किसी एक इंसान या संस्था ने आपको प्रेरित किया और इस दिशा में बढ़ने की ओर प्रोत्साहित किया?

नहीं, मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। मैं आईएफएस के ग्लैमर, उसकी मनमोहकता की ओर आकर्षित हुयी। दूसरे पेशों से ये काफी अलग था। इसमें मुझे बाहर घूमने-फिरने का खूब मौका मिलता। मुझे पर्वतारोहण, चट्टानों पर चढ़ने आदि का शौक था। अक्सर लड़के ही ऐसे काम करते हैं। इसलिये भी मुझे यह पेशा काफी अच्छा लगा। इसके समतुल्य आईएएस और आईपीएस के पेशों में, इस प्रकार तकनीकी कुशलताओं और ग्लैमर का मेलजोल मुझे नहीं दिखा।

यह शायद 1980 के आसपास की बात होगी?

हां। उस समय तक पर्यावरण की समस्यायें अपना सिर उठाने लगीं थीं और हम लगातार उन्हें अखबारों में पढ़ते थे। मेरा दृढ़ विश्वास तब भी था, और अब भी है कि अगर हमारे देश में एक-तिहाई क्षेत्रफल पर जंगल हों तो हमारी 80 प्रतिशत पर्यावरण संबंधी समस्यायें अपने आप हल हो जायेंगी। मुझे लगा कि आईएफएस की नौकरी द्वारा मैं देश की उचित रूप में सेवा कर पाऊंगी।

एक बार जब आपने अपना मन बना लिया तब क्या आपके परिवार और मित्रों ने आपको प्रोत्साहित किया?

शुरू में मां और पिता दोनों ने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया। परंतु एक बार जब मैं परीक्षा में सफल हो गयी तो मां काफी परेशान हुयीं। वो अचानक मेरे बारे में फिक्र करने लगीं। पिताजी ने उन्हें काफी समझाया कि अगर मैं इस नौकरी को सही प्रकार से नहीं निभा पायी तो मैं कोई दूसरी नौकरी ढूँढ लूंगी। मेरे माता-पिता ने शुरू से ही मेरा हौसला बढ़ाया। मेरी दो और बहनें हैं और हम तीनों ही नौकरियां करती हैं। माता-पिता ने हमें शादी करके घर बसाने के लिये कभी भी बाध्य नहीं किया। पिताजी ने हमेशा यही कहा कि हमें बड़े होकर व्यक्तिगत रूप में कुछ हासिल करना चाहिये। उनके प्रोत्साहन का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

क्या आपको कभी कुछ डर लगा?

हां, कई बार। मुझे कई बार ऐसा लगा जैसे मैं खो गई हों। इतना स्पष्ट था कि मैं जिस काम में लगी थी उसे सामान्यतः मर्द ही संभालते थे। परंतु इसमें आपके अपने व्यक्तित्व का भी बहुत असर पड़ता है। शुरू-शुरू में ऐसा लगा - "चलो अब मैं फारेस्ट अफसर बन जाऊंगी। इसका मतलब होगा कि मैं जंगलों में जाऊंगी और उन्हें बचाने

के लिये काम करूंगी।” परंतु जल्दी ही एक बात समझ में आ जाती है कि इसमें बहुत सारा प्रशासनिक काम भी होगा - निचले अधिकारियों से काम लेना होगा, अपनी टीम का सही प्रबंधन करना होगा और अन्य लोगों के साथ अच्छे संबंध बनाने होंगे। असल में मुख्य काम तो ‘लोगों के प्रबंधन’ का ही है। मुझे इस बात का डर था कि लोग मुझे एक पेशेवर के रूप में स्वीकार करेंगे, या नहीं।

क्या आपको स्वीकार किया गया?

हां, मुझे लगता है।

आईएफएस अफसर किस प्रकार बना जा सकता है?

आईएफएस की परीक्षा यूपीएससी परीक्षा से अलग होती है। इसमें कोई आरंभिक परीक्षा नहीं होती है। इस परीक्षा में केवल विज्ञान विषय के स्नातक छात्र ही बैठ सकते हैं। यह परीक्षा लगभग यूपीएससी की परीक्षा प्रणाली पर ही आधारित है। इसमें एक अंग्रेजी और एक सामान्य ज्ञान का भी पेपर होता है। तुलनात्मक रूप में इस परीक्षा में भूगोल, भूविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान आदि पर अधिक जोर होता है। परंतु इसका कोई पक्का नियम-कानून नहीं है। उसके बाद दो अन्य विशेष पेपर भी होते हैं जिनके लिये आप कई विषयों में से चुन सकते हैं जैसे वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, कृषि, भूविज्ञान, सांख्यिकी और इंजिनियरिंग आदि। लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद कुछ विशेषज्ञ आपका साक्षात्कार लेंगे। आपसे जो प्रश्न पूछे जायेंगे वो बहुत कुछ आपके अपने बायोडेटा पर आधारित होंगे। उसके पश्चात आपका डाक्टरी परीक्षण होगा और अंत में एक शारीरिक परीक्षण होगा जोकि विशेष रूप से आईएफएस के लिये बना है। इसमें उत्तीर्ण होने के लिये न्यूनतम ऊंचाई, भार, सीने को फुला पाना और सामर्थ्य होना जरूरी है। इसमें महिलाओं को 16 किलोमीटर और आदमियों को 25 किलोमीटर चलना पड़ता है।

क्या यह सभी परीक्षण दिल्ली में ही होते हैं?

हां।

हमने सुना है कि एक बैच का यह परीक्षण मई के महीने में हुआ था और उसमें कई परीक्षार्थी बेहोश हो गये थे?

हां, दो-तीन बैचों को इस समस्या का सामना करना पड़ा था। साधारणतः ये परीक्षार्थी जुलाई के आसपास होती हैं और शारीरिक परीक्षण दिसंबर के आसपास। परंतु इन बैचों की क्योंकि लिखित परीक्षार्थी जनवरी में ली गयीं थी इसलिये उन्हें सामर्थ्य का परीक्षण दिल्ली में मई के मध्य में देना पड़ा।

अगर आप शारीरिक परीक्षण में भी पास हो जायें, तो आप चुन लिये जाते हैं?

हां। उसके बाद आपको पहले लाल बहादुर शास्त्री अकादमी, मसूरी में प्रशासनिक कुशलतायें हासिल करने के लिये भेजा जाता है। उसके बाद देहरादून में दो साल का प्रशिक्षण शुरू होता है, जो अब दो हिस्सों - पक्ष 1 और पक्ष 2 में बांट दिया गया है। यह बिल्कुल आईएएस जैसा ही है। डेढ़ साल के पक्ष 1 में तीस विषयों की पढ़ाई के साथ-साथ आपको सभी प्रकार की बातें और कुशलतायें सिखायी जायेंगी। इन विषयों में इंजिनियरिंग निर्माणकार्य, सड़क की सीध नापना, भूविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, वर्गीकरण, सांख्यिकी आदि होंगे। पक्ष 2 में फील्ड में ठोस कामों पर अधिक जोर होगा। आपको प्रोजेक्ट करने होंगे और जिस राज्य के लिये आपको चुना गया है उसकी समस्याओं के लिये हल खोजने होंगे। आपको घुड़सवारी, हथियारों का इस्तेमाल, मोटर मकेनिक आदि की बुनियादी ट्रेनिंग भी दी जायेगी। इसके लिये देहरादून स्थित इंडियन मिलिट्री एकेडमी (आईएमए) की सहायता ली जाती है। इस ट्रेनिंग के पश्चात एक साल की परिवीक्षा (प्रोबेशन) होती है जिसमें प्रशिक्षार्थी को फारेस्ट सर्विस के विभिन्न विभागों से अवगत कराया जाता है। इसलिये आपको कुछ समय के लिये रेंज फारेस्ट अफसर का काम भी करना पड़ सकता है जिसमें बैंक जाकर पैसे निकालना, उन्हें मजदूरों में बांटना, और हिसाब-किताब रखना आदि, शामिल हो सकता है। इसके पीछे समझ यह है कि आपको हर स्तर का हरेक काम आना चाहिये।

क्या पहली पोस्टिंग सीधे डिप्टी कंजरक्टर आफ फारेस्ट की पदवी से होती है?

आपको कुछ समय तक के लिये निचले स्तर पर काम करना पड़ता है। उसके बाद में आपको डीसीएफ की पोस्टिंग मिलती है। यह पदवी डीएफओ (डिस्ट्रिक्ट फारेस्ट आफिसर) के समतुल्य होती है। डीएफओ वो होते हैं जो प्रमोशन द्वारा इस पद तक पहुंचते हैं और वो आईएफएस के जरिये नियुक्त नहीं किये जाते हैं।

क्या महिला होने के नाते आपको कुछ विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा?

केवल 1980 से ही महिलाओं को आईएफएस में भर्ती होने का अवसर मिला है। मैं 1987 के बैच की हूँ। आज भी, पूरे महाराष्ट्र में मुझे मिलाकर, केवल तीन महिला डीसीएफ ही हैं। सामान्य तौर पर तो हमें स्वीकार किया गया है परंतु हमारी ओर लोगों का व्यवहार और बर्ताव कुछ अलग होता है। एक अफसर ऐसा था जो हमेशा मेरी तरफदारी करता था। दूसरे ने मुझ से जमकर, कोल्हू के बैल की तरह काम लिया। गर्भवती हालत में भी उसने मुझे कोई भी छूट और रियायत नहीं दी!

क्या आप अपने राज्य में पोस्टिंग ले सकती हैं?

नहीं, हरेक कोई ऐसा नहीं कर सकता है। केवल प्रवीणता-सूची के कुछ लोग ही अपने राज्य को चुन सकते हैं। एक-तिहाई पदवियों पर राज्य के अंदर वाले लोग और दो-तिहाई पर राज्य से बाहर के लोग होते हैं। इस अनुपात को कड़ाई से बनाये रखा जाता है। राज्य निश्चित होने के बाद आपको उस राज्य की भाषा की परीक्षा भी पास करनी होती है।

एक बार राज्य चुनने के बाद क्या आपको अपनी नौकरी का पूरा कार्यकाल वहीं बिताना होगा?

आप चाहें तो अपने राज्य से उधारी यानि डेप्यूटेशन पर किसी अन्य राज्य या विभाग में 4 मानक वर्ष, और एक साल अधिक यानि, कुल 5 साल के लिये जा सकते हैं। परंतु उसके बाद आपको दुबारा फिर अपने ही राज्य में आना होगा।

नौ साल की नौकरी के दौरान आपने किन-किन प्रकल्पों पर काम किया है, उनके बारे में कुछ बतायें?

मेरी पहली पोस्टिंग 1989 में पुणे में हुई। प्रमोशन के बाद मुझे दुबारा पुणे की पोस्टिंग मिली। यह दोनों पोस्टिंग क्योंकि शहरी थीं इसलिये इनमें प्रशासनिक कार्य ही अधिक था। मेरी तीसरी पोस्टिंग, रायगढ़ जिले में डीसीएफ की हैसियत से हुयी और वहां मैं सामाजिक वानिकी के काम की देखरेख करती थी। मेरा पहला काम था चालू स्कीमों की जानकारी को लोगों तक पहुंचाना क्योंकि, अधिकांश लोगों को उनके बारे में कुछ मालूम ही नहीं था। उसके बाद हमें उनके कई चहेते मिले। जहां तक नये प्रकल्पों की बात है मैंने परती जमीन के विकास के लिये कुछ अर्जियां भेजी हैं परंतु उन्हें अभी तक मंजूरी नहीं मिली है। एक प्रोजेक्ट जो मुझे बहुत प्रिय है वो है अलीबाग शहर के बाहर एक स्मृति-वन का विकास। इसके पीछे का विचार है कि कोई भी व्यक्ति अपने प्रियजन की याद में किसी भी किस्म का पेड़ इस भूमि पर लगा सकता है। उस पेड़ के रखरखाव के लिये उसे मात्र 500 रुपये ही देने होंगे। हमने मिट्टी की गुणवत्ता के अनुरूप वहां पर सैकड़ों पेड़ लगाये हैं। इससे हमें वहां पर बारिश के पानी को एकत्रित करने में सहायता भी मिली है। दो कुओं की खुदाई से उस इलाके को हरा-भरा रखने के लिये हमें पर्याप्त पानी मिला है। अभी यह पूरा प्रकल्प आरंभिक स्थित में है पर हमें उम्मीद है कि वो एक हरित-पट्टी के रूप में विकसित होगा, जिसकी इस क्षेत्र को बेहद जरूरत है। क्योंकि शहरवासियों ने ही उन पौधों को लगाया होगा इसलिये उनका इन पेड़ों से एक करीबी का भावनात्मक संबंध होगा।

अब जब आपका नासिक तबादला हो गया है तो कोई दूसरा व्यक्ति वहां आपके स्थान पर आयेगा। आपने वहां जो काम शुरू किया क्या उसे दूसरा व्यक्ति भी जारी रखेगा?

(हंसती हैं)। अगर आप यह सोचने लग जायें कि आपके प्रकल्पों का क्या होगा तो आप शायद उनके लिये कभी भी कुछ न करें। आपसे जितना संभव हो उनता अच्छी तरह करें और उस स्थिति में आने के बाद उसे छोड़ दें।

क्या अन्य सिविल सर्विस की नौकरियों की तरह यहां भी बहुत तबादले होते हैं?

हां। हमारे यहां हरेक तीन साल में तबादला होता है। यह लगभग अनिवार्य है।

आपकी नौकरी पर आपके पति की क्या प्रतिक्रिया है?

(हंसती हैं)। उनकी काफी मदद मिली है। हमारी शादी 1993 में हुई। उस समय तक मैं फारेस्ट अफसर बन चुकी थी। वो मेरे पेशे की प्रकृति से अच्छी तरह अवगत थे। उन्होंने पढ़ाने के पेशे को मनमर्जी से चुना है। शादी के समय मेरी पोस्टिंग पुणे में थी और इसलिये उन्होंने भारतीय विद्यापीठ इंजिनियरिंग कालेज, पुणे में नौकरी ले ली। जब मेरा तबादला अलीबाग में हुआ तो वो भी पेन इंजिनियरिंग कालेज में आ गये। यही सबसे करीब का विकल्प था। हर बार जब वो किसी नये कालेज में नौकरी लेते हैं तो एक साल तक उन्हें कोई भी छुट्टी नहीं मिलती है। इसलिये हर बार मेरे तबादले के साथ उन्हें अपनी छुट्टियां गंवानी पड़ती हैं। अभी तक हम भाग्यशाली रहे हैं कि जिन दोनों जगहों पर

जहां मेरी पोस्टिंग हुई वहीं उन्हें आसपास कोई उपयुक्त नौकरी मिल गयी है। कुछ समय तक हमें एक-दूसरे से दूर रहना पड़े हम इस बात के लिये भी तैयार हैं। मेरे पति मेरी दिक्कतों को समझते हैं और उसमें मेरी सहायता भी करते हैं।

आपकी नौकरी के दबाव के कारण क्या आपके परिवार को कभी-कभी परेशानियां भी झेलनी पड़ती हैं?

नौकरी के बाद मुझे जो भी अतिरिक्त समय मिलता है मैं उसे पूरी तरह अपने परिवार के साथ बिताती हूँ। मेरी एक चार बरस की बेटी है। जब वो छोटी थी तो उसके पास अधिक समय बिताना मेरे लिये बहुत मुश्किल हो जाता था। दौरे पर जाते समय अगर साथ में कोई बड़ा उच्च अधिकारी साथ नहीं होता तो मैं बेटी को भी अपने साथ ही लेकर जाती! कई बार उसे बीमार छोड़कर भी मुझे काम पर जाना पड़ा है। तब मेरी सास उसको मेरे आफिस में लेकर आतीं। अगर उस समय आप मेरे आफिस में आतीं तो आप मेरी बेटी को मेज पर एक ओर सोते हुये और मुझे दूसरी ओर काम करते हुये पातीं। कभी-कभी आपको इन परिस्थितियों से जूझना ही पड़ता है। सामाजिक वानिकी जैसे प्रकल्पों में, आफिस छोड़ने के बाद उस दिन के लिये आपका काम पूरी तरह खत्म हो जाता है। परंतु असली फारेस्ट विभाग में यह ड्यूटी, चौबीसों घंटे की होती है। कभी भी रात में या दिन में फोन बज सकता है और फिर आपको सर्वेक्षण के लिये जाना पड़ सकता है। इसलिये परिवार का सहयोग बेहद आवश्यक है, विशेषकर पति या पत्नी का।

वो कौन से आवश्यक गुण हैं जो एक फारेस्ट अफसर में होने चाहिये?

उसे घूमने/फिरने वाला होना चाहिये क्योंकि यात्रायें इस पेशे के का एक अहम हिस्सा हैं। प्रशासनिक कुशलतायें भी जरूरी हैं क्योंकि आखिर आपको दूसरे लोगों से ही काम लेना होता है। तकनीकी ज्ञान भी जरूरी है क्योंकि तभी आप प्रकल्प को जल्दी से समझ पायेंगी। यह इसलिये होता है क्योंकि आपका प्रशिक्षण एक चीज में होता है और आपसे बिल्कुल दूसरे तरह का काम कराया जाता है।

क्या आप युवा पीढ़ी को आईएफएस में जाने की सलाह देंगी?

हां। जरूर। हमें ऐसे बहुत से ईमानदार लोगों की आवश्यकता है जो पर्यावरण संरक्षण के लिये समर्पित हों।

अलीबाग में श्री पार्थ बापट द्वारा लिये गये साक्षात्कार के कुछ अंश। उसके तुरंत बाद ही सुश्री सुनीता सिंह का डिप्टी कंजरवेटर आफ फारेस्ट की पद पर नासिक तबादला हो गया।

श्री पाथ बापट 'दरीच' नाम की एक पर्यावरण संस्था चलाते हैं।

नीता शाह

नीता शाह एक स्वतंत्र जीववैज्ञानिक हैं। भारत के ढंडे और गर्म रेगिस्तानों क्षेत्रों पर उन्होंने शोधकार्य किया है। बीएससी और एमएससी की उपाधियों के बाद उन्होंने वाइल्डलाइफ इंस्टिट्यूट आफ इंडिया, देहरादून में, पीएचडी के लिये दाखिला लिया। उन्होंने कच्छ की खाड़ी में, जंगली गधों के परिवेश पर शोधकार्य किया है। उनके अध्ययनों में पहली बार, जंगली गधों पर, रेडियो-टेलीमेटरी तकनीकों का प्रयोग किया गया। उनके शोधकार्य ने जंगली गधों के परिवेश के प्रबंधन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1994 से नीता के अध्ययन क्षेत्र कच्छ के गर्म रेगिस्तानों से हटकर, हिमालय के पार लद्दाख और सिक्किम का क्षेत्र बने हैं। परंतु जंगली गधों पर उनका शोध अभी भी जारी है। वो जंगली गधों पर शोधकार्य के दौरान तिब्बत और चीन के क्षेत्रों को देखने के लिये तत्पर और उत्साहित हैं।

कच्छ की खाड़ी के जंगली गधे

मेरा बचपन बैंगलोर में बीता। स्कूली दिनों में मैं बहुत उत्साही थी और खेलों में प्रवीण थी। मेरे माता-पिता ने भरतनाट्यम से मेरा परिचय कराया। मैंने बचपन के अगले नौ वर्ष कठिन प्रशिक्षण, शारीरिक मुद्राओं का अभ्यास, भावनाओं के नियंत्रण और भावमुद्राओं को संवारने में गुजारे। इस ट्रेनिंग से मुझे जीवन में बहुत लाभ मिला। मुझे कनार्टक गायकी भी सीखने का सुअवसर मिला। मैं अपने नृत्य और संगीत शिक्षकों का शुक्रगजार हूँ जिन्होंने बहुत धीरज से मुझे शास्त्रीय नृत्य सिखाया। इससे मुझे प्रकृति का महत्व समझने में भी मदद मिली।

मेरे परिवार की हमेशा ऐसी गतिविधियों में रुचि थी जिनसे हम प्रकृति के करीब आयें। बचपन से ही मेरे

माता-पिता, भाई और मैं ऐसी योजनायें बनाते जिससे कि हम कर्नाटक के दूर-सुदूर और बीहड़ इलाकों में अपनी छुट्टियां बिता सकें। मेरे भाई को पर्वतारोहण का बहुत शौक था। वो हिमालय के सघन वनों और दूर-सुदूर के इलाकों में अपना समय बिताता और फिर मुझे अपने अनुभवों को बताता।

जब मैं बैंगलोर में सोफिया हाई स्कूल की छात्रा थी तो मुझे छुट्टियों में, देश के विभिन्न भागों में, भ्रमण के लिये ले जाया जाता था। इस प्रकार मैंने स्वतंत्र रूप से स्थितियों से जूझना सीखा। जैसे सामान्य लोगों का सपना होता है वैसे मैं भी बड़े होकर डाक्टर या दंतचिकित्सक बनना चाहती थी। परंतु लगता है कि प्रकृति की कुछ और ही मर्जी थी। मुझे जीवविज्ञान में स्नातक की डिग्री की पढ़ाई के लिये वडोडरा के एम एस विश्वविद्यालय में दाखिला मिल गया।

इन सारे वर्षों में मैं डब्लूडब्लूएफ-इंडिया, आईएनएसओएनए (उस समय इंडियन सोसायटी फार नैचुरलिस्ट्स) और बाबे नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी की सक्रिय सदस्या थी। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में मुझे विश्वास था, मैं पर्यावरण संबंधी प्रकृति शिक्षण शिविरों की गतिविधियों में भाग लेती। अंत में विश्वविद्यालय के वनस्पतिशास्त्र विभाग में मेरी भेंट प्रतिष्ठित गुरु/शिक्षक प्रोफेसर जी एम ओजा से हुई। मैंने उन्हें वन्यजीवन और प्रकृति संरक्षण में अपनी रुचि के बारे में बताया और मैंने प्रयोगशाला की बजाए फील्ड अध्ययन करने में रुचि दिखायी। उन्होंने ही संरक्षण के क्षेत्र में मेरा मार्गदर्शन किया जो अंत में मेरा पेशा बना।

मैं, 80 के दशक के शुरुआत से ही विश्वविद्यालय के दिनों से ही प्रकृति संबंधी गतिविधियों से जुड़ी थी। हफ्ते के अंत में हम लोग पक्षी-निरीक्षण और पक्षियों की गिनती करने के लिये भ्रमण पर जाते थे। एमएससी स्तर पर यह, पक्षीविज्ञान विषय की पढ़ाई का ही एक भाग था। विश्वविद्यालय के कुछ अन्य मित्रों के साथ मैं सुबह होने से पहले ही निकल जाती। हम पक्षियों के अवलोकन के साथ-साथ वडोडरा के आसपास के दलदली इलाकों के पक्षियों को भी गिनते। वहां पर एक खेत था जिसमें शहर का गंदा पानी गिरता था। वहां बहुत सारी चिड़िये आकर्षित होती थीं।

मेरी सबसे गहरी रुचि इथोलॉजी (यानि जानवरों के व्यवहार विज्ञान) में थी। मैं ऐसे विषयों को खोजने लगी जिनके बारे में फील्ड अध्ययन करना संभव हो। 1983 तक मैं आसपास के सभी जंगली क्षेत्र और अभयारण्य घूम चुकी थी - खुद अकेले या फिर शिविरों के जरिये। यहां मैंने बहुत से स्थानीय लोगों से मिलकर चर्चायें कीं और उनसे जंगलों के बारे में बहुत कुछ सीखा। मैं उन दिनों वन्यजीवन पर कोई भी फिल्म या टीवी कार्यक्रम देखने का मौका नहीं गंवाती थी। उस दौरान मैंने जीवव्यवहार वैज्ञानिकों, प्राणि वैज्ञानिकों और संरक्षण पर काम कर रहे लोगों से संबंधित कई पुस्तकें भी पढ़ीं। अफ्रीका में प्राणि वैज्ञानिकों ने जिस प्रकार का काम किया, उसने मुझे बहुत आकर्षित किया।

इतवार वाले दिन मैं अपनी साइकिल पर वडोडरा के पास स्थित माही नदी के ऊबड़-खाबड़ वाले इलाकों में जाती और वहां पूरा दिन जंगली जानवरों और पक्षियों का अवलोकन करती। अब वो क्षेत्र, सिंधरौड नेचर रिजर्व के नाम से जाना जाता है। वडोडरा में मेरे घर के पास कृषि के खेत और अमरूद के बगीचे थे। यहां मैं पूरे-पूरे दिन पक्षियों, सियारों, जंगली बिल्लियों और सरीसृपों का निरीक्षण और अध्ययन करती। धीरे-धीरे इस क्षेत्र का विकास होने लगा और खुले मैदान सिमटने लगे। आज वहीं पर एक बड़ा रिहायशी इलाका है - मोर और सियारों की आवाजें अब वहां नहीं सुनाई देती हैं।

मैंने फील्ड आधारित संरक्षण का काम करने का पक्का निश्चय कर लिया था। इसलिये इस क्षेत्र में संभावनायें जानने के लिये मैंने बीएनएचएस से संपर्क किया और वाइल्डलाइफ इंस्टिट्यूट आफ इंडिया (डब्लूआईआई) को भी लिखा। एक दिन भाग्य ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मुझे डब्लूआईआई, देहरादून में एक लिखित परीक्षा के लिये बुलाया गया। यह जीवविज्ञान में मेरे एमएससी खत्म होने के तुरंत बाद हुआ। मैंने देहरादून पहुंच कर परीक्षा दी, उसमें उत्तीर्ण हुई और फिर साक्षात्कार के लिये गयी। कुल आठ लोगों को चुना गया और उसमें से मैं ही अकेली महिला जीव वैज्ञानिक थी। इस प्रकार संरक्षण के क्षेत्र में मेरा काम शुरू हुआ। उन्मुखीकरण की अवधि समाप्त होने के बाद मुझे रेगिस्तान में काम करने के लिये भेजा गया। शुरू की योजना में मुझे संरक्षण विस्तार के काम में भेजा जा रहा था। इस पर मैंने तत्काल प्रतिक्रिया की और अधिकारियों से निवेदन किया कि जीवविज्ञानी होने के नाते मेरी रुचि दो पायों वाले जीवों से अधिक चौपायों में होगी।

1988-89 में, मैं पहली बार कच्छ की खाड़ी को देखने गयी। उस अनुभव की याद मैं अभी तक भुला नहीं पायी हूं। जाड़ा खत्म होने के बाद धीरे-धीरे गर्मी बढ़ रही थी। सामने एक सपाट, बीहड़, सूखा मैदान था जो लगभग शून्य में

खोया था। उसी समय भूरी, नमकीन मिट्टी क्षितिज से मिली और उसे देखकर दिल में एक रहस्यमयी भावना पैदा हुयी। मुझे ऐसा लगा जैसे यही वो क्षेत्र है जहां मैं अपना सबसे उत्तम योगदान दे पाऊंगी। मुझे पहले दिन से ही इस इलाके में बहुत अपनापन जैसा लगा। मेरा ड्राइवर यादगिरी, हैद्राबाद का रहने वाला था। उसने पहले कभी रेगिस्तान नहीं देखा था। उसके चेहरे पर उलझन दिखाई दी क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था जैसे वो चारों तरफ से पानी से घिरा हो। मैंने उसे उस जगह पर चलने को कहा जहां उसे पानी दिखाई दिया हो। जब उसे वहां पहुंच कर पानी के कोई दर्शन नहीं हुये तब उसे अपने दृष्टिभ्रम का अंदाज हुआ। ऐसा तब लगता है जब कोई मृगमारीचिका (मिराज) देखता है। वो उस इलाके से जल्दी ही वापिस जाना चाहता था। वो समझ नहीं पा रहा था कि मैं अगले साढ़े तीन साल तक उस इलाके में कैसे काम करूंगी।

फील्ड में मेरे ड्राइवर धर्मसिंह थे। वो गाड़ी के साथ सूर्यास्त तक रहते और फिर मुझे उस जानवरों के उस झुंड के पास से लेने के लिये आते, जिनका मैं अवलोकन कर रही होती। एक बार, कोपरानी के पास, धर्मसिंह जीप को सीधे, खुर प्राणियों के झुंड के बीच में ले गये और इससे उन जानवरों की सामान्य दिनचर्या गड़बड़ा गयी। मैंने उनसे जानना चाहा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। उन्होंने बताया कि जब वो दोपहर के बाद सो रहे थे तब अचानक कहीं से सात औरतें आयीं और उन्होंने उनसे पूछा, “आप यहां जीप में लेटे क्या कर रहे हैं, जबकि आपकी मैडम (यानि मैं) वहां धूप में खड़ी हैं?” उसके बाद उन्होंने जीप स्टार्ट की और मुझ तक जल्दी पहुंचने के लिये उन्होंने जीप को तेजी से दौड़ाया। फिर वो जानवरों के उस झुंड से आकर टकरा गये जिसका मैं अवलोकन कर रही थी। इस हादसे के कारण उस दिन, सुबह से शाम तक का मेरा पूरा काम बेकार चला गया।

मुझे वो दिन भी याद हैं जब मैं रेडियो-कालर बंधे अपने जंगली गधे को खोजने में असमर्थ होती। तब मैं बहुत निराश और दुखी होती। परंतु फिर मैं खाड़ी के बियाबान इलाके में गाड़ी चलाकर अपनी सारी निराशा को त्याग देती। खाड़ी में कुछ घंटे बिताने के बाद मुझे बेहद चैन और तसल्ली मिलती। इसलिये खाड़ी का वो क्षेत्र, दुख और सुख दोनों में, मेरा साथी बना।

एक दिन जाड़ों में मध्यरात्रि के समय जब मैं रेडियो-कालर बंधे गधों की गतिविधियों का अवलोकन कर रही थी तब अचानक वीराने में, मुझे एक रोशनी दिखायी दी। वहां पहुंचने पर मुझे एक वाघरी परिवार मिला जो इतनी रात गये खाना पका रहा था। पूछने पर उन्होंने बताया कि वो कंटोली पूछों वाली छिपकलियां पकड़ रहे थे। जाड़ों में ये छिपकलियां शीतनिद्रा में सोयी होती हैं इसलिये यही उनको पकड़ने का सबसे उपयुक्त समय होता है। वो वाघरी समूह अभी तक बारह छिपकलियां पकड़ चुका था जिनकी पीठ तोड़ने के बाद उन्हें एक थैले में डाल दिया गया था। इसे देख मुझे बहुत गुस्सा आया। मुझे एक अधखुदा गड्ढा दिखायी दिया और उसमें से मैंने एक छिपकली को मुक्त किया। यह पालतू छिपकली मेरे साथ छह सालों तक रही। उस छिपकली ने बहुत सैर-सपाटा किया - उसने मेरे साथ बैंगलोर से हिमालय की गढ़वाल पहाड़ियों तक की सैर की।

मेरी महिंद्रा जीप का नाम पड़ा ‘प्रोसोपिस डांसर’ (प्रोसोपिस को हिंदी में पगला बबूल कहते हैं)। उस जीप में मैंने खाड़ी में एक लाख किलोमीटर से भी अधिक की यात्रा की। हम कभी-कभी ही पक्की सड़क पर जाते। इससे प्रकार जीप चलाने से समय बचता और ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर भी नहीं चलना पड़ता। अब शायद यह रोमांचक लगे परंतु उस समय मुझे टीम के साथ अपने तौर-तरीकों को ढालना पड़ा था। धीरे-धीरे टीम के सदस्य भी मेरी कार्यप्रणाली को समझ गये थे और उन्होंने भी मुझे सहयोग दिया था।

बारिश के मौसम में भी मुझे शोध के लिये घूमना-फिरना जरूरी था। मैं हर माह जंगली गधों की गिनती करती थी। वर्षा में मैं इसके लिये जीप इस्तेमाल नहीं कर सकती थी। इन परिस्थितियों में मैं केवल ‘रेगिस्तान का जहाज’ यानि ऊंट द्वारा ही गीली खाड़ी में इधर-उधर घूम सकती थी।

एक बार मैंने पूरी रात भर चार ऊंटों के काफिले के साथ खाड़ी की यात्रा की। उस साल बहुत कम बारिश हुयी थी और इससे खाड़ी की जमीन पर यात्रा करना सामान्य से भी अधिक कठिन हो गया था। मुझे एक द्वीप पर जाकर वहां पर जंगली गधों की संख्या को गिनना था। मेरा वहां रात को ठहरने का कोई इरादा नहीं था क्योंकि वहां कभी भी बारिश हो सकती थी। गर्म हवा में बहुत नमी थी। ऊंट की लंबी और कठिन यात्रा के बाद हम लोग द्वीप पर पहुंचने से पहले कुछ देर सुस्ताने के लिये रुके।

मुझे यह देखकर काफी हैरानी हुयी कि मेरे सहायकों ने मेरे हिस्से के पानी को एक जेरीकैन में खाली कर दिया था। उनके विचार में, महिला होने के नाते, पानी के अभाव में मैं वापिस लौट चलूंगी! मैंने उन्हें फटकार सुनायी और उनसे एक ऊंट पर वापिस जाकर पानी लाने को कहा। मुझे द्वीप पर पानी होने का पता तो था परंतु निरीक्षण करने पर वो पानी पीने लायक नहीं निकला। द्वीप पर मुझे जंगली गधों का एक बड़ा झुंड दिखायी दिया। तालाब में बहुत कम पानी ही बचा था क्योंकि गडेरिये वहां पहले से आ चुके थे और उनके मवेशियों ने पानी को गंदा, बदबूदार और मल से भर दिया था। अंत में मैंने उस पानी को उबाला (जिससे वो हरा हो गया) और फिर मैंने उसे अपनी हनारी (कैनवस का थैला जिसे रेगिस्तान में पानी ठंडा करने के लिये उपयोग में लाया जाता है) में भरा। हम लोगों ने बिना कुछ खाये ही काम चलाया।

मैंने देर शाम तक गधों की गिनती की और उसके बाद द्वीप को छोड़ा। मैं खुश थी क्योंकि इस सारी मेहनत से काफी कुछ हासिल हुआ था। दो ऊंटों और सहायकों को मैंने पहले ही दूसरे द्वीप पर पूर्व तैयारी के लिये भेज दिया था। अचानक मुझे नीचे की जमीन धंसती हुयी महसूस हुयी। सुबह के मुकाबले जमीन अब अधिक धंस रही थी। ऊंटेस्वर (ऊंट के चालक) को उस जगह का कुछ अतापता नहीं मालूम था। हम लोग कहां थे यह भी उसे नहीं पता था। यह सुनकर मैं एकदम सहम गयी। हमारे पास केवल एक गिलास पानी बचा था। खाड़ी में रात के समय अत्यधिक ठंड पड़ती है। हमारी प्रार्थना सफल हुयी और जल्द ही हमें सूखी जमीन का एक टुकड़ा मिला। वहां पर हम ऊंट से उतरे और उस दिन के लिये हमने काम बंद किया।

इस बीच मेरे सहायक दूसरे गांव में पहुंच गये थे। वहां हमारे न पहुंचने पर वो फिर करने लगे थे। गांव के मुखिया - खान चाचा जिनके साथ मैं पिछले साढ़े तीन साल से रह रही थी इससे बहुत परेशान हुये। धीरे-धीरे करके रात बीती। मुझे पूरी रात ऊंट के पास बैठे जगना पड़ा क्योंकि ऊंट के नीचे दबने का डर था (ऊंट अपनी करवट बदलता है और भगवान जाने मैं कब उसके नीचे आ जाऊं।)

मैं भोर से पहले ही उठ गयी। मैं ऊंट पर चढ़कर बैठी और सूरज के उगने की प्रतीक्षा करने लगी जिससे कि मैं अपने गांव की ओर कूच कर सकूँ। मैंने पानी वाले स्थल की ओर अपनी यात्रा शुरू की। तभी मुझे क्षितिज पर 10-15 लोग दिखायी दिये जो द्वीप की ओर बढ़ रहे थे। ये सभी गांववासी थे, उनके हाथों में पानी के कनस्तर थे और वो हमें खोजने के लिये आ रहे थे। मुझे तलाशने के लिये उन्होंने, रात को साढ़े तीन बजे गांव छोड़ा था।

खाड़ी में नहाना बहुत कम ही होता था। धूल भरी आंधियों से ही इंसान पूरी तरह नहा जाता है। हम लोग खुद अपना खाना पकाते थे और रेत के कणों के साथ उसे चुपचाप खाते थे।

खाड़ी में सितारों से भरी रात के नीचे सोना भी एक अनूठा अनुभव है। पूर्ण चंद्रमा वाली रातें सबसे मनमोहक होती हैं। उस दिन आसमान में इतना प्रकाश होता है कि जीप की हेडलाइट जलाने की जरूरत ही नहीं पड़ती है। रहने की तमाम मुश्किलें झेलने के बाद भी मुझे खाड़ी में बहुत आनंद आया। मुझे खाड़ी हमेशा ही बहुत सुरक्षित स्थान लगा। एक बार वहां पहुंचने के बाद आप समस्त दुनिया से पूरी तरह कट जाते हैं।

खाड़ी के लोगों ने इस दौरान मेरा बहुत ख्याल रखा और मेरी बहुत खातिरदारी की। मैं इसके लिये खाड़ी और उसके निवासियों की सदैव आभारी रहूंगी। अपने पति, माता-पिता और दोनों परिवारों के सहयोग के बिना भारत के इन बीहड़, बंजर, परंतु जीवन से परिपूर्ण, ठंडे और गर्म इलाकों में मेरे लिये काम करना संभव न हो पाता।

इस क्षेत्र में मैं अब एक अच्छी प्रशासक, श्रोता और योजनाकार बन गयी हूँ। ध्यान से अवलोकन करने की क्षमता के साथ-साथ इसमें इंसान को पूरी तरह समर्पित होना पड़ता है। इस पेशे में बहुत सहनशक्ति भी चाहिये परंतु इसमें आपको अपने देश की संपदा के संरक्षण की अपार खुशी भी मिलती है।

तब मैं खाड़ी को 'आंधियों और मृगमरीचकाओं का देश' बुलाती थी। मुझे आज भी उसकी बहुत याद सताती है। इस क्षेत्र ने मुझे कुछ अनूठे अनुभव, शक्ति और आत्मविश्वास दिया। मैंने यहां अकेलेपन, थकान, मायूसी की मार झेली है। मुझे अपनी टीम के सदस्यों (जिनमें सभी स्थानीय लोग थे) को उनके क्षेत्र में, अपने शोध का उद्देश्य समझाना पड़ा है। आज मेरा नाम उन ठोस, शक्तिशाली और अतिसुंदर चौपायों - 'गोरखर' यानि जंगली गधों के साथ जुड़ गया है।

मेरी जिंदगी कठिनाईयों और रोमांच से भरी हुयी है पर अंत में मुझे वन्यजीवन के संरक्षण का पेशा चुनने का कोई

गम नहीं है। मुझे मृगमरीचकाओं के इस बंजर इलाके से दिली लगाव हो गया है और मैं हर साल वहां अपने जंगली गधों से मुलाकात करने जाती हूँ।

कासिम मोहम्मद

कासिम मोहम्मद और उनका परिवार सालों से नलसरोवर के पास रहते आये हैं। यह बड़ा ताल गुजरात में, अहमदाबाद से लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस ताल पर बड़ी मात्रा में, प्रवासी पक्षी आकर्षित होते हैं, विशेषकर जाड़े के मौसम में। बहुत से दर्शक और सैलानी इन पक्षियों को देखने के लिये आते हैं। कुछ ताल के पास पिकनिक मनाने भी आते हैं। कासिम एक ऐसे परिवार से आते हैं जिसने बरसों से नाव चलाने का काम किया है। कासिम का अपने परंपरागत पेशे के साथ-साथ, नलसरोवर पर आये पक्षियों के बारे में अधिक जानने में गहरी रुचि है। वो अपने इस ज्ञान को दो-पाये पर्यटकों के साथ भी बांटने को इच्छुक हैं! वो एक स्वयंशिक्षित पक्षी-निरीक्षक हैं और उनमें अभूतपूर्व उत्साह है।

पक्षी मेरी पड़ोसी हैं

मेरा नाम कासिम मोहम्मद है। मैं 34 साल का हूँ। मैं गुजरात फारेस्ट विभाग के लिये नलसरोवर पक्षी अभयारण्य में नाव चलाने का काम करता हूँ। यह ताल 120 वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैला है और अहमदाबाद से 60 किलोमीटर दूर है। इस सरोवर में बहुत से पक्षी रहते हैं परंतु जाड़े के मौसम में यहां दूर-सुदूर के बहुत से प्रवासी पक्षी भी आते हैं जिनमें खासतौर पर राजहंस (फ्लैमिंगोज), हवासील (पेलिकिन) और कई प्रजातियों की बत्तखें भी होती हैं। बहुत से पर्यटक नलसरोवर आते हैं – कुछ पक्षी-निरीक्षण के लिये परंतु अधिकांश पिकनिक मनाने आते हैं।

मेरा काम सुबह जल्दी ही शुरू हो जाता है। मैं पर्यटकों का अपनी नाव में, सरोवर के एक किनारे पर इंतजार करता हूँ। मैं उन्हें सरोवर में नौका विहार के लिये ले जाता हूँ और साथ में उन्हें पक्षियों के दर्शन भी करता हूँ। परंतु अधिकांश पर्यटकों की पक्षी-निरीक्षण में विशेष रुचि नहीं होती है। उन्हें बस पिकनिक के दौरान, नौकाविहार में मजा आता है।

मेरे पिता जब सरोवर में नाव चलाते थे तब मैंने उनके साथ काम करना शुरू किया। मेरे पिता ने मुझे नाव चलाना सिखाया। मैं पांचवी कक्षा तक पढ़ा हूँ। मेरे माता-पिता ने पढ़ाई खत्म करने के तुरंत बाद मेरी शादी कर दी। मुझे चार बहनों के साथ-साथ अपने परिवार की देखभाल भी करनी पड़ती है। मुझे पता था कि एक दिन मैं भी अपने पिता की तरह ही नाव चलाऊंगा। मेरे पास कोई और चारा भी नहीं था। जब से पिता कमजोर और बीमार हुये तब से उन्होंने नाव चलाना छोड़ दिया। उसके बाद मुझे ही इस काम को संभालना पड़ा। अब मेरे पिता और एक बहन, गेट के पास चाय की दुकान चलाते हैं। नाव चलाने के लिये बहुत ताकत, सहनशक्ति और उर्जा की जरूरत होती है।

मुझे यह नहीं पता कि मुझे कैसे पक्षियों के नाम याद हुये परंतु पक्षियों में रुचि किस तरह जगी यह मुझे अच्छी तरह याद है। जब मैं सात साल का था तो एक बूढ़ा आदमी नलसरोवर को देखने आया करता था। हर कोई उस बूढ़े आदमी की बातें करता। उनके पास एक कैमरा था और जब वो कैमरे का बटन दबाते तो उससे निकलती 'क्लिक' की आवाज मुझे बहुत पसंद आती। जब मुझे पता चला कि वो एक पक्षी वैज्ञानिक हैं तो मैं अचरज करने लगा कि भला लोग पक्षियों का क्यों अध्ययन करते हैं। बाद में मुझे पता चला कि उनका नाम डा सलीम अली था। वो एक नामीगिरामी व्यक्ति थे और उन्होंने प्रकृति विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया था। उनकी उस यात्रा के बाद से मैं पक्षियों को ध्यान से देखने लगा। मैं पक्षी-निरीक्षण करते-करते ही बड़ा हुआ हूँ और इस दौरान मैंने पक्षियों की आबादी को घटते हुये भी देखा है।

इस सरोवर के चारों ओर सात गांव बसे हैं। इनके निवासी मूल रूप से मछलियां पकड़ते हैं और कुछ अधिक पैसे कमाने के लिये चिड़ियों को भी पकड़ते हैं। वो कुछ चिड़ियों को बेंच देते हैं और कुछ को खा जाते हैं। पक्षियों को पकड़ने के लिये वो दो बांसों की सहायता से एक खड़े जाल को पानी सतह पर लगाते हैं। मेरी पक्षियों में रुचि एक घटना के बाद से शुरू हुयी। मैंने और मेरे मित्र ने एक पक्षी को जाल में फंसा हुआ पाया। हमें लगा कि पक्षी मरा

होगा परंतु वो बच गया। हमने जब जाल में से पक्षी को छुड़ाया तो हम उसके पंखों का रंग और उसकी चोंच देखकर दंग रह गये। यह पहला अवसर था जब मैंने किसी चिड़िया को इतने करीब से देखा था।

एक बार मैंने और मेरे मित्र ने बेवकूफी में पक्षियों को फंसाने की योजना बनायी। हमने ऐसा क्यों किया यह मुझे अब याद नहीं। हमने ऐसे दो बांस और जाल लिये जिनसे स्थानीय लोग पक्षियों को पकड़ते थे। दोनों बांसों को इकट्ठा लगाना आसान नहीं था। दो घंटे तक पानी में संघर्ष करने के बाद हम जाल को फैलाने में सफल हुये। सुबह को हम उसमें फंसे पक्षी को देखने के लिये आये। हमारे दोनों बांस और जाल गायब थे! यह देखकर हमें बड़ा गहरा धक्का लगा। अंत में हमने उन्हें किनारे के पास तैरता हुआ पाया। हमें इस बात का भी अंदाज लगा कि पक्षी पकड़ना कोई आसान काम नहीं है!

सरोवर के पास रहने वाले बच्चे अपने आसपास हो रही चीजों से सीखते हैं। इस प्रकार पक्षियों को आज भी पकड़ा जाता है। मुझे इस बात का भय है कि अगर सरोवर के आसपास रह रहे बच्चों को ताल और पक्षियों के महत्व की शिक्षा नहीं मिलेगी तो वो कहीं एक दिन पक्षियों के शिकारी न बन जायें। कुछ नाविकों को रात के समय सरोवर की चौकीदारी का काम दिया जाता है। चौकीदारी करने के दौरान मैंने बहुत से जालों को पकड़ कर उन्हें फारेस्ट विभाग को सौंपा है। जालों की संख्या को फाइल में दर्ज किया जाता है और इस प्रशंसनीय कार्य के लिये मुझे कुछ अंक मिलते हैं। मुझे दुख है कि इन अंकों को केवल रपटों में ही गंभीरता से लिया जाता है परंतु उन पर कभी भी कोई ठोस कदम नहीं उठाया जाता है। इस प्रकार की घटनायें मुझे उदास और परेशान करती हैं। मुझे फिक्र लगी रहती है कि अगर इस प्रकार की वारदातें जारी रहीं तो एक दिन सभी पक्षी लुप्त हो जायेंगे। एक बार रात को चौकीदारी के समय शिकारियों ने मेरा पीछा किया जिससे एक पत्थर मेरे सिर पर आकर लगा। इन घटनाओं से मेरे परिवार के सदस्य परेशान होते हैं और मुझे इन मामलों से दूर रहने की सलाह देते हैं।

दिसंबर और जनवरी के महीनों में नलसरोवर में सबसे अधिक पर्यटक आते हैं। तब तालाब पर विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों का मेला सा लगा रहता है। पक्षियों को देखने के बाद लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रियायें होती हैं। जिन पर्यटकों की पक्षियों में बिल्कुल रुचि नहीं होती उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उन्हें जोर की आवाजें निकालने और गाना गाने में ही मजा आता है। अगर मैं उनसे चुप रहने की अपील भी करूं तो भी मेरी बात नहीं मानते। कुछ अहमदाबाद के कंकारिया चिड़ियाघर को, पक्षी-निरीक्षण की बेहतर जगह मानते हैं। उनके अनुसार वहां पर आप पक्षियों को करीबी से और स्पष्टता से देख सकते हैं। परंतु कुछ लोग केवल पक्षी-निरीक्षण के लिये ही यहां आते हैं और वो मेरे पिता से चाय की दुकान पर ही मेरे बारे में मालूमात हासिल करते हैं। जिन लोगों की पक्षियों में रुचि होती है वो मेरी बातों को बड़े ध्यान से सुनते हैं और जाते वक्त मुझे अपने विजिटिंग कार्ड और पते देते जाते हैं। नलसरोवर में नये पक्षियों के आने की सूचना वो मुझसे टेलीफोन करके बताने को कहते हैं। मैं पर्यटकों को अधिक पैसों के लालच में, पक्षी-निरीक्षण नहीं कराता हूं। ऐसा करने से मुझे बड़ी खुशी मिलती है। मैं उम्मीद करता हूं कि ये पर्यटक वापिस जाकर अन्य लोगों को नलसरोवर की बहुमूल्य संपदा के बारे में बतायेंगे। मुझे अभी तक किसी दूसरे पक्षी अभयारण्य में जाने का मौका नहीं मिला है। अक्सर दर्शक, राजस्थान के भरतपुर पक्षी अभयारण्य का जिक्र करते हैं। परंतु मेरे लिये तो यहीं भरतपुर है।

बहुत से पर्यटक पूछते हैं कि मैंने पक्षियों के नाम कैसे सीखे, क्योंकि मैं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं हूं। मैंने इन्हें पुस्तकों या एक विशेष व्यक्ति से नहीं सीखा। मैं पक्षी-निरीक्षण करता हुआ ही बड़ा हुआ, परंतु उन सभी के नाम, खासकर के अंग्रेजी के नामों को याद करने में मुझे कई वर्षों का समय लगा। जब कभी यहां बड़े अफसर या पक्षी-निरीक्षक आते तो वे पुस्तकों में देखकर आपस में चर्चा करते। मैं उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुनता और कभी-कभी किताबों में झांककर उनकी तस्वीरों को पास से देखने की कोशिश करता था।

अब मैं नलसरोवर के लगभग सभी पक्षियों को पहचान सकता हूं। वो यहां कब आते हैं और कहां अपने घोंसले बनाते हैं यह भी मुझे पता है। पिपि (जसाना) और जलमुर्गियों (मूरहेन) जैसे पक्षी तैरती वनस्पतियों में ही अपने घोंसले बना लेते हैं। इसलिये नाव को, सरोवर के घास वाले इलाके में ले जाते हुये और किनारे पर चलते समय मुझे सावधानी बरतनी पड़ती है।

मैं चाहता हूं कि मेरे सहनाविक भी पक्षियों के बारे में सीखें और सिखायें। अक्सर नाव वाले पक्षियों के गलत नाम

बताते हैं। वो कई बार गजपांव (ब्लैकविंग स्टिल्ट) को राजहंस (फ्लैमिंगो) का बच्चा बना देते हैं! वो पर्यटकों के मनोरंजन के लिये मनमर्जी की कहानियां गढ़ लेते हैं। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता है। हमें नलसरोवर को इस प्रकार नहीं बेंचना चाहिये। पक्षियों के कारण ही इतने सैलानी नलसरोवर आते हैं और हमें उन्हें सही और तथ्यात्मक जानकारी देना चाहिये।

नाव चलाने वालों की चेतना बढ़ाना महत्वपूर्ण है। हम चाहें तो पक्षियों को बचाने का काम कर सकते हैं। इसलिये सरोवर के संरक्षण का काम हमारे अपने हित में है। मेरा सपना इस स्थान को एक सुरक्षित जगह बनाने का है। मैं नलसरोवर को हरेक मौसम और छटा में लिपिबद्ध करना चाहता हूं। अगर इस प्रकार की डाक्युमेंटरी को लोग टेलीविजन पर देखेंगे तो वो इस सरोवर के बारे में अधिक जान पायेंगे। अगर आफिस क्षेत्र में ही एक शैक्षणिक केंद्र खोला जाये तो बहुत अच्छा होगा। नौका विहार से पहले लोग उस केंद्र में जायेंगे तो अच्छा होगा।

इस सरोवर के आसपास रहने वाले लोगों को इस तालाब के महत्व के बारे में भी समझाना होगा। मुझे लगता है कि हमें आसपास के गांवों में जनजागरण और चेतना का कार्यक्रम चलाना चाहिये, खासकर छोटे लड़के-लड़कियों के लिये। उन्हें सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है और उन्हें पक्षियों के इस स्वर्ग के पास रहने का गर्व होना चाहिये।

नौका चालक और पक्षी-निरीक्षक होने के अपने ही फायदे हैं। मैं पक्षियों को बिना विघ्न पहुंचाये भी उनके पास तक जा सकता हूं। मैं विभिन्न पक्षियों की आवाजों को स्पष्ट सुन पाता हूं और मुझे उनके व्यवहार और घोंसलों के अवलोकन का अवसर भी मिलता है। मुझे लगता है नलसरोवर ही मेरा घर है और पक्षी ही मेरी पड़ोसी हैं। मुझे नलसरोवर के रखरखाव में अपने छोटे से योगदान से खुशी मिलती है और मैं उस दिन का इंतजार कर रहा हूं जब हरेक गांववासी भी अपने आपको नलसरोवर का एक अभिन्न अंग समझेगा।

सेंटर फार इंवायरनमेंट एड्युकेशन की अंबिका अइयादुराई को सुनाई वार्ता पर आधारित।

अर्चना बाली

अर्चना बाली ने प्रकृति अध्ययन के एक शिविर में भाग लेकर संरक्षण के पेशे में अपना पहला कदम रखा। उन्होंने अपनी इस गहरी रुचि का उच्च शिक्षा के साथ भी संबंध जोड़ा है। वो भोपाल के ग्रीनहार्ट्स नेचर क्लब की एक संस्थापक सदस्या हैं। यह क्लब स्थानीय स्कूलों और कालेजों में बड़ी सक्रियता से पर्यावरण गतिविधियों को बढ़ावा दे रहा है। यह क्लब वनविहार राष्ट्रीय उद्यान में भी सक्रिय है। यहां पर क्लब के सदस्य, आने वाले दर्शकों से बातचीत कर उन्हें उद्यान और उसके प्राणियों के संबंध में जानकारी देते हैं। अर्चना एक अन्य स्रोत समूह की भी सदस्य हैं। यह समूह रीजनल म्यूजियम आफ नैचुरल हिस्ट्री में आने वाले बच्चों के लिये पर्यावरण संबंधी गतिविधियां और शैक्षणिक सामग्री विकसित करता है। वो म्यूजियम में आने वाले दर्शकों के व्यवहार और बर्ताव का अध्ययन भी करती हैं। वो भविष्य में अपने आपको इस प्रकार की अन्य गतिविधियों के साथ जोड़ना चाहती हैं।

देखो! मैं आ रहा हूं!

मुझमें हमेशा कुछ अलग करने की इच्छा थी। जब मैं बहुत छोटी थी तब मैं एक वकील बनना चाहती थी। परंतु क्योंकि मेरे झूठ पर कभी कोई यकीन नहीं करता था इसलिये मैंने फिर डाक्टर बनने की सोची! वो भी साधारण डाक्टर नहीं। मैं कैंसर या अनुवांशिकी के क्षेत्र में कोई नया शोधकार्य करना चाहती थी (वैसे इनके बारे में मुझे कुछ अधिक पता नहीं था।) इन उम्मीदों के साथ एक और रोचक तथ्य जुड़ा था - मुझे जीवविज्ञान से सख्त नफरत थी।

जब मैं दसवीं कक्षा में थी तब मैं एक प्रकृति क्लब की सदस्य बनी। इसका नाम था 4एफ फोरम जिसका पूरा नाम था 'फोरम फार फारेस्ट्री फरदरेंस' यानि जंगलों को बढ़ावा देने वाला समूह। इसी क्लब के कारण मैं अपने पहले प्रकृति शिविर में जा पायी। सर्दियों के मौसम में, पांच दिनों का यह शिविर बड़वानी के जंगलों में लगा। यह दिन मेरे जीवन में सबसे अविस्मरणीय दिन साबित हुये। जंगल ने मेरा मन मोह लिया और मेरा हमेशा-हमेशा के लिये वहां रहने का मन करने लगा।

इस शिविर के बाद मेरा व्यवहार बदला। उसके बाद प्रकृति मेरे लिये सिर्फ मनोरंजन की चीज ही नहीं गयी। मुझे

लगा कि उसके रखरखाव के लिये मुझे कुछ करना चाहिये। मैं जो भी कुछ करना चाहती थी उसे मैं अब खोज पायी थी। मैंने 'पर्यावरण और वनों' को अपना पेशा बनाने का निश्चय किया। इसका काफी श्रेय मेरी मां को भी जायेगा क्योंकि उन्होंने प्रकृति में मेरी रुचि को लगातार प्रोत्साहन दिया।

मजे की बात तो यह है कि मैंने अभी-अभी वाणिज्य और कम्प्यूटर विषयों में स्नातक की डिग्री समाप्त की है और इस समय मैं सौफ्टवेयर डेवलपमेंट और इंफरमेशन टेक्नालिजी कोर्स के चौथे सत्र की छात्रा हूँ। परंतु अब मैं इंडियन इंस्टिट्यूट आफ फारेस्ट मैनेजमेंट (आईआईएफएम) भोपाल से स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त करना चाहती हूँ। मैं आईआईएफएम के परीक्षा फल का इंतजार कर रही हूँ।

बचपन में मुझे याद है कि जब कभी भी हमारे घर में, बाहर किसी शहर से मेहमान आते थे तो, अन्य दर्शनीय स्थलों के साथ-साथ हम उन्हें वनविहार दिखाने अवश्य ले जाते थे। एक बार मैं अपने चचेरे भाई-बहनों के साथ वनविहार गयी थी। इतवार का दिन था और वहां कई अन्य परिवार भी मौजूद थे। एक बड़े परिवार के बच्चे आपस में स्पर्धा में लगे थे जिसे 'भालू को निशाना बनाओ' ही कहना उचित होगा। वो पूरा दम लगाकर उस निरीह प्राणी पर पत्थरों की बौछार कर रहे थे। मैं एक बच्चे के पास गयी और मैंने उसे ऐसा करने से रोका। वो इस तरह से रोने और चीखने लगा जैसे मैंने उसे कत्ल करने की कोशिश की हो। उसके बाद उसकी मां मुझ पर आकर चीखने-चिल्लाने लगी। इस बेइज्जती को मैं सह न सकी और मैंने भी उनकी ओर पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। अंत में हम लोगों के बीच में 'महाभारत' छिड़ गयी। मेरे भाई ने बीच-बचाव करके उन्हें बचाया। मुझे इस युद्ध में जीत की खुशी मिली। परंतु बाद में इसके लिये मेरी मां ने मेरी खूब पिटायी लगायी। यह एक ऐसी घटना है जिसे मैं अभी तक नहीं भूल पायी हूँ।

वैसे तो मैं अपने परिवार के साथ वनविहार जाती ही रहती थी परंतु 1993 की गर्मियों के बाद से मैंने वहां पर नियमित रूप से जाना शुरू कर दिया। शुरू में मैं वहां सुबह के समय अपने तीन अन्य मित्रों के साथ जाती थी - नारायण जो अब आईआईटी मुंबई में है, अवि जो अब इंजिनियरिंग कर रहा है और कौस्तुभ जिसे पक्षी-निरीक्षण में गहरी रुचि है। उस समय हम चारों ही 4 फोरम के सदस्य थे।

पिछले एक साल से मैं वनविहार में, सप्ताह के अंत में दो दिनों के लिये, स्वयंसेवी के रूप में काम करती हूँ। इस काम में ग्रीनहार्टस नेचर क्लब के अन्य सदस्य भी भाग लेते हैं।

जंगलों ने मुझे हमेशा से आकर्षित किया है। वनविहार केवल एक चिड़ियाघर नहीं है, यह एक राष्ट्रीय अभयारण्य के समान है। यह शहर के मध्य में स्थित है परंतु यहां पर आप असली जंगल में वन्य प्राणियों और पक्षियों का आनंद ले सकते हैं। मुझे वनविहार से न जाने क्यों गहरा लगाव हो गया है। इसे मैं समझा पाने में असमर्थ हूँ। जैसे जब आप अपने से कुछ फीट की दूरी पर एक बाघ को बैठे हुये देखते हैं तब आप खुद ही इस सुंदर प्राणी के मोहजाल में फंस जाते हैं। अन्य जीवों के साथ भी यही है।

हम ग्रीनहार्टस नेचर क्लब की साप्ताहिक बैठक भी वनविहार में ही करते हैं। सदस्यों के नाते हम लोग वन्यजीवों से संबंधित ही कुछ काम करना चाहते थे। परंतु साथ में हम यह भी चाहते थे कि हमारा काम सार्थक हो और सही दिशा में हो। हमारे क्लब के सलाहकार सोमित देव बर्मन और जाई शर्मा ने ही ग्रीनहार्टस के सदस्यों को वनविहार में स्वयंसेवियों के रूप में काम करने का योजना सुझायी।

इसमें स्वयंसेवियों को, सामान्य दर्शकों और साधारण लोगों को, प्राकृतिक संसाधनों के बारे में इस तरह समझाना था जिससे कि वे उसके महत्व को समझ जायें। इसका अलावा स्वयंसेवियों को उद्यान के 'करो' और 'निषेध' नियमों के क्रियान्वन की देखरेख भी करनी थी। वनविहार के निदेशक श्री अमिताभ अग्निहोत्री को यह योजना पसंद आयी। इस प्रकार बात आगे बढ़ी और ग्रीनहार्टस के सदस्य वनविहार में स्वयंसेवी कार्य करने लगे।

हमारा काम आगन्तुकों से, जो अक्सर अजनबी ही होते थे से बातचीत करना होता था। लोगों की प्रतिक्रियायें अक्सर काफी रोचक और कभी-कभी मजेदार भी होती थी।

एक बार एक आदमी बाड़ पर चढ़ कर शेर को बुलाने लगा। वो शेर को इस तरह बुला रहा था जैसे वो उस आदमी का कोई पुराना मित्र हो। अचानक उसी समय शेर वहां आ गया। मैंने उस आदमी के पास जाकर उससे तुरंत चुप रहने और नीचे उतरे को कहा। उस आदमी ने उत्तर दिया, "मैडम, मैं उस शेर को पिछले दस मिनटों से बुला

रहा हूं। और मेरे बुलाने के कारण ही वो मुझ से मिलने के लिये आया है। और अब आप चाहती हैं कि मैं उससे बात भी न करूं?”

मुझे उस पर बहुत गुस्सा आया। परंतु उसका उत्तर सुनने के बाद मैं अपनी हंसी को भी नहीं रोक पायी।

इन मजेदार और रोचक अनुभवों के साथ-साथ कुछ निराशाजनक अनुभव भी हुये। एक रविवार वाले दिन लड़के और लड़कियों का एक ग्रुप उद्यान में आया। उनको देखकर साफ लगा कि वो यहां प्रकृति का आनंद लेने के लिये नहीं आये थे। वो लगातार चीखते-चिल्लाते रहे, कान फोड़ने वाला संगीत बजाते रहे और कार का हार्न बजाते रहे। पार्क में इस सबके करने पर निषेध है।

मैं वहां दो अन्य मित्रों के साथ मौजूद थी। मैंने बड़े शिष्टाचार के साथ एक लड़के से हार्न और संगीत बंद करने के लिये कहा, क्योंकि उद्यान में ऐसा करने की सख्त मनाही थी। उसने जिस बदतमीजी से जवाब दिया उससे मुझे बहुत गुस्सा आया। वो हमें गालियां देने लगा जिसे मेरे लिये बर्दाश्त करना मुश्किल हो गया। मैंने भी बदले में वही क्रिया जो मैंने एक बार बचपन में किया था और जल्दी एक और ‘महाभारत’ छिड़ गया। एक चौकीदार ने जब यह नजारा देखा तो वो गेट बंद करने गया। लड़के को समस्या गंभीर होती दिखी और वो तुरंत अपनी कार लेकर वहां से खिसक लिया।

उस दिन मुझे बहुत बुरा लगा और बेहद बेबसी भी महसूस हुयी। परंतु इसी का नाम जिंदगी है। मैं अब इस प्रकार की समस्याओं और चुनौतियों को झेलने के लिये मानसिक रूप से तैयार हूं। ऐसी परिस्थितियों में अपने दिमाग को ठंडा रखना चाहिये, यह महत्वपूर्ण सबक मैंने सीखा है।

चिड़ियाघर में मेरे जैसे स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं की क्या जिम्मेदारियां हैं? पहली बात तो आने वाले दर्शकों को उद्यान और उसके प्राणियों से संबंधित सही जानकारी देना, जिससे लोग बाघ को बाघ ही बुलायें और न कि चीता! साथ में उद्यान के प्रशासन की ‘करो’ और ‘निषेध’ नियमों के पालन में सहायता देना। यह देखना कि दर्शक जानवरों को परेशान न करें और न ही पार्क में कोई अन्य गलत काम करें। मेरे काम में दर्शकों को पर्यावरण संबंधी जानकारी देना और शिक्षण भी शामिल है। साथ में मैं पार्क के अन्य कर्मचारियों को सही प्रकार काम करने में मदद देती हूं।

चिड़ियाघर के स्वयंसेवी के जीवन का एक दिन रोचक, निराशा, थकान से भरा हो सकता है परंतु उसमें भरपूर आनंद भी होता है।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, मैं अपनी लक्ष्य तय कर चुकी हूं। मैं फारेस्ट मैनेजमेंट में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात औपचारिक रूप से पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में उतरूंगी। मेरा नाम “अर्चना बाली” को आप जरूर याद रखें क्योंकि किसी दिन आप पायेंगे कि यह नाम किसी अभयारण्य के निदेशक या प्रसिद्ध पर्यावरणविद के नाम से जुड़ा होगा!

लेखकों के पते:

कार्तिकेय साराभाई

सेंटर फार इंवायरनमेंट एडयूकेशन

नेहरू फाउंडेशन फार डेवलपमेंट

थालतेज टेकरा, अहमदाबाद - 380 054

टेली: (079)6442642, 6442651

एस्थर डेविड

गुप्ता नगर

पिराजी सागरा हाउस के समीप

वासना, अहमदाबाद

टेली: (079)6602281

प्रोफेसर एच वाय मोहन राम
194, एसएफएस डीडीए फ्लैट्स
एस पी मुखर्जीनगर
नई दिल्ली 110 009
टेली: (011) 7652773

रोमोलस विटेकर
सेंटर फार हरपेटॉलोजी
मद्रास क्रोकोडाइल बैंक ट्रस्ट
पोस्ट बाक्स नंबर 4, ममल्लापुरम
तमिलनाडु 603 104
टेली: (04114) 46332
sthiru@giasmdo1.vsnl.net.in

आर सुकुमार
एशियन एलीफेंट रिसर्च एंड कंजर्वेशन सेंटर
इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस
बैंगलोर 560 012
टेली: (080) 3092786
rsuku@ces.iisc.ernet.in

इसाक केहिमकर
बीएनएचएस, हार्नबिल हाउस
डा सलीम अली चौक
शहीद भगत सिंह रोड
मुंबई 400 023
टेली: (022) 2821811, 2821817
bnhs@bom3.vsnl.net.in

रवि चेल्लम
वाइल्डलाइफ इंस्टिट्यूट आफ इंडिया
पोस्ट बाक्स नंबर 18, चंद्रावनी
देहरादून 248 001
टेली: (0135) 640112 से 640115
ravi@wii.gov.in

शेखर दत्तात्री
इको मीडिया, प्लाट नंबर 4, डोर नंबर 6
तीसरी ईस्ट स्ट्रीट, चेन्नई 600 041
टेली: (044) 4415744, 4914802

dattatri@giasmdo1.vsnl.net.in

सीमा भट्ट
सी-379, डिफेंस कालोनी
नई दिल्ली 110 024
टेली: (011) 4620830

दीपक दलाल
गुलाब बंगला 132/3
गुलमोहर पार्क
आई टी आई सड़क से दूर, औंध
पुणे 411 007

सुनीता सिंह
डिप्टी कंजरवेटर आफ फारेस्ट्स
वेस्ट नासिक फारेस्ट डिविजन
सतपुरा रोड, नासिक
महाराष्ट्र
टेली: (0235) 572730

नीता शाह
द्वारा कमर कुरैशी
वाइल्डलाइफ इंस्टिट्यूट आफ इंडिया
पोस्ट बाक्स नंबर 18, चंद्राबनी
देहरादून 248 001
टेली: (0135) 640112
qnq@wii.gov.in

कासिम मोहम्मद
द्वारा रेंज फारेस्ट आफिसर
पोस्ट आफिस वेकारिया
विरमगांव तालुका
जिला अहमदाबाद

अर्चना बाली
ग्रीनहार्ट्स नेचर क्लब
146/4 प्रीमियम सेंटर
एम पी नगर, जोन-1
भोपाल - 462 011
टेली: (0755) 553011